नादान

लेखक

माइल ख़ैराबादी

अनुवादक

कौसर लईक़

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
(अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है)

परिचय

आजकल मुहब्बत की कहानियाँ कुछ इस तरह लिखी जाती हैं कि पढ़नेवालों ो आभास होता है, जैसे उनमें अश्लीलता और नग्नता को जान-बूझकर सम्मिलित र दिया गया है । साधारणतया बाज़ार में ऐसी कहानियों और नाविलों की ंग भी बढ़ रही है । इन अश्लील और नग्न कहानियों और नाविलों का ज़ेहनों ा विपरीत प्रभाव पड़ता है । फिर यही ज़ेहन शिष्टता और नैतिकता के विध्वंस ा जो नमूना पेश करते हैं, इससे हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति परिचित है । संजीदा हन रखनेवाले चाहते हैं कि इन नग्न और अश्लील कहानियों और नाविलों बदले चरित्र को सँवारनेवाली कहानियाँ मैदान में लाई जाएँ ।

चरित्र निर्माण करनेवाली कहानियाँ अच्छी शैली और मधुर भाषा में लिखी एँ तो आशा की जानी चाहिए कि इनको भी पढ़ा जाएगा । अतएव जब ही नाविल "मर्दे नादाँ" के नाम से हिजाब (उर्दू मासिक पत्रिका) में क़िस्तवार प रहा था, तभी से माँग की जाने लगी थी कि इसे जल्द से जल्द मार्केट आना चाहिए । इसके लिए हमारे पास पेशगी आर्डर भी आने लगे थे, लेकिन न चाहते थे कि पूरा नाविल हिजाब में प्रकाशित हो जाए और इसपर पाठकों ो राएँ और उनके मशविरे हमें मिल जाएँ तो इसे पुनरावलोकन के बाद प्रस्तुत या जाए ।

अल्लाह का शुक्र है यह मरहला तय हो गया, पुनर्निरीक्षण और संशोधन साथ "मर्दे नादाँ" उर्दू में प्रकाशित किया गया । अब हिन्दी पाठकों की चना पर इसका हिन्दी अनुवाद "नादान" नाम से प्रस्तुत किया जा रहा है, ल्लाह से उम्मीद है कि लाभप्रद सिद्ध होगा ।

इसके लेखक आदरणीय माइल ख़ैराबादी साहब हैं, जिनसे आप अच्छी ह परिचित हैं । वह यह प्यारभरी और शिक्षापूर्ण कहानी प्रस्तुत करने में पूरी ह सफल नज़र आते हैं । कहीं पर भी अश्लीलता का निशान तक नहीं है । र्द, औरत, लड़के, लड़कियाँ सभी निस्संकोच पढ़ सकते हैं । यह किताब

इतनी दिलचस्प और इसकी ज़बान इतनी प्यारी है कि पाठक इसमें खोकर र
जाता है । आशा है कि जो भी पढ़ेगा, इसके लेखक और अनुवादक को दुअ
देगा । हम बड़े गर्व के साथ इसे प्रस्तुत करते हैं ।

—प्रकाश

बिसमिल्लाहिर्रहिमानिर्रहीम
(अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है)

नादान

(1)

"मुहतरमा ! शायद आपको मालूम नहीं कि इस बस्ती में ग़रीब साहब का ाम क्या है ? मैं आपको बताऊँ कि इस बस्ती के सभी बूढ़े और बुज़ुर्ग ग ग़रीब साहब को अपना बेटा समझते हैं; चाहे वे औरतें हों या मर्द । बस्ती के जवान ग़रीब साहब को अपना भाई मानते हैं और इस बस्ती लड़के और लड़कियाँ, चाहे इस स्कूल के छात्र हों या न हों, ग़रीब साहब चचा कहते हैं । ग़रीब साहब ने दस वर्षों में यहाँ जो सेवा की है, जिस ठा से स्कूल में काम किया है और जिस निःस्वार्थता के साथ रह रहे हैं, का तक़ाज़ा भी यही है कि हम उन्हें यह मक़ाम दें । वे यहाँ हर व्यक्ति प्रिय हैं । आपको आए हुए छः महीने भी नहीं हुए, आपने ग़रीब साहब अच्छी तरह जाना भी नहीं, उनकी सूझ-बूझ और तबीअत को पहचाना नहीं, जहाँ तक मेरी मालूमात का तअल्लुक़ है इन छः महीनों में विस्तृत ालाप व बातचीत का कोई संयोग भी आपके और उनके बीच नहीं हुआ आप उन्हें और उनके चरित्र को परख सकें, आप ने बिना समझे-बूझे निहायत फ़ और सर्वप्रिय व्यक्ति को अनुचित शब्द कह दिया! इन छः माह के दर आपकी मेहनत और सूझ-बूझ का भी कुछ अनुमान यहाँ की जनता को ा है ? आपके बारे में भी अच्छे विचार प्रकट किए जा रहे हैं, लेकिन ट है कि आपको वह लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई जो ग़रीब साहब को प्राप्त । हम सब जानते हैं कि आप एक सुशिक्षित और सभ्य महिला हैं । निस्संदेह ाने क़ुरबानी भी दी है । इस ग़रीब स्कूल के लिए एक बड़ा वेतन और री छोड़ी । हम इसके भी गवाह हैं कि आप एक पाकदामन और बाइज़्ज़त ी हैं । यह सब ठीक है, लेकिन अगर ख़ुदा न करे यहाँ आम लोगों को ूम हो जाए कि आपने ग़रीब साहब को फ़लाँ शब्द कहा है, तो शायद बरदाश्त न करे और फिर मैं नहीं जानता कि इसका परिणाम क्या निकले । ब साहब को आज मैंने कुछ चिंता में पाया । समाचार पूछा तो उन्होंने शिकायत तौर पर नहीं, हँसते हुए, लुत्फ़ लेते हुए बताया कि आपने उन्हें 'झडूस'

कह दिया । आश्चर्य है कि आपकी ज़बान से यह शब्द कैसे निकल गया मेरा ख़याल है कि चलती ज़बान में आप कह गईं । क्या मैं आपसे उम्मी करूँ कि आप ग़रीब साहब से माफ़ी माँग लेंगी ?"

इतना कहकर मैं चुप हो गया और इंतिज़ार करने लगा कि देखूँ प्रिंसिप साहिबा क्या जवाब देती हैं । मैंने अनुभव किया कि उन्होंने एक लम्बी साँ ली । बीच में परदा पड़ा होने के कारण मैं उस वक़्त उनके चेहरे के प्रभा न देख सका । मैंने कहा :—

"क्या आप की ख़ामोशी का मतलब मैं यह समझूँ कि आप अपना य शब्द वापस लेने को तैयार हैं ?"

"जी नहीं, मैं माफ़ी माँगने के लिए हरगिज़ तैयार नहीं हूँ । मेरी ख़ामोश के मानी यह हरगिज़ नहीं कि मेरी ज़बान से जो शब्द निकला है, उसे वाप ले लूँगी । मैं तो इसलिए ख़ामोश थी कि आप को जो कुछ कहना है पू कह लें, तो कहिए आप को अपने ग़रीब साहब की तरफ़दारी में जो कुछ कह था, वह कह लिया आप ने ?"

प्रिंसिपल साहिबा के जवाब से मुझे मायूसी भी हुई और दुख भी पहुँचा मैंने कहा— "जी हाँ, मुझे जो कुछ कहना था, कह लिया मैंने । अब अ फ़रमाइए ।"

"सबसे पहली गुज़ारिश यह है कि जिस तरह आप ने एक लम्बा भाप दे डाला और यह नहीं सोचा कि इतने लम्बे भापण से सुननेवाला बोर हो सक है। मैं भी इसके जवाब में कुछ अर्ज़ करूँगी और आप से उम्मीद करूँगी ि आप भी मेरी तरह ख़ामोशी और संजीदगी से मेरा जवाब सुनेंगे ।

"मैनेजर साहब ! आप ने ग़रीब साहब की तरफ़ से जो शिकायत की उसे मैं शिकायत ही स्वीकार नहीं करती । आप ही कहते हैं कि ग़रीब साह ने हँसते हुए और लुत्फ़ लेते हुए आपको बताया कि मैंने उनको झडूस क दिया । शब्द 'झडूस' पर जो व्यक्ति मुस्कुराए और हँसे और उससे लुत्फ़ ले तो फिर शिकायत कैसी । मेरा ख़याल है कि शिकायत आपको है, ग़र साहब को नहीं । आप ग़रीब साहब से दरयाफ़्त करें, क्या वास्तव में उन मेरे यह कहने से दुख पहुँचा ? अगर उन्हें शिकायत है, तो माफ़ी के लि सोचा जा सकता है ! जी हाँ! सोचा जा सकता है । माफ़ी का नम्बर तो ब में आएगा ।

"यह तो हुई पहली बात । दूसरी गुज़ारिश यह है कि मैं यह कैसे स्वीकार कर लूँ कि उन्हें यह मक़ाम हासिल है, जो आप फ़रमा रहे हैं । मैं देखती हूँ कि आप के ग़रीब साहब जो यहाँ किसी के बेटे, किसी के भाई और किसी के चचा है, वही ग़रीब साहब अपना खाना अपने हाथ से पकाते हैं । आप साहिबान अपनी आँखों के तारे को चूल्हे में फू-फू करते देखते रहते हैं । लेकिन इतनी तौफ़ीक़ नहीं होती कि उसी सर्वप्रिय ग़रीब का खाना कहीं पकवा दिया करें....."

"प्रिंसिपल साहिबा ! मैंने उनसे....." मैंने कुछ बताना चाहा तो प्रिंसिपल साहिबा ने यह कह कर रोक दिया, "आप तो बीच में बोल उठे । मर्द की अजीब आदत होती है । वह जब एक औरत से बात करता है, तो चाहता है ख़ुद कहे और औरत सुने । यह आदत आपके ग़रीब साहब में भी है । आप लोग इस मामले में अपना सुधार कर लें तो अच्छा है ताकि जितनी बड़ी बात आप औरत के सामने कहते हैं, उसका आधा-चौथाई ग़रीब औरत भी कह ले । आप मुस्करा रहे हैं, मैनेजर साहब ! ग़रीब साहब तो मात्र नाम के ग़रीब हैं, दरअसल ग़रीब है औरत ज़ात, जो लाख पढ़ी-लिखी और कितनी ही अनुभवी क्यों न हो, है कमज़ोर जान । वह मर्द की मुहताज है । यह मुहताजी इसलिए है कि क़ुदरत ने उसे नर्म-नाज़ुक और कमज़ोर-शरीर बनाया और मर्द को मज़बूत-जिस्म और शक्तिशाली बनाया । यह ग़रीब, कमज़ोर-जिस्म यानी मैं उस जगह से, जहाँ एक बड़ी तनख़्वाह पाती थी, भागी इसीलिए कि मैं औरत हूँ और आप के यहाँ इस उम्मीद पर आई कि यहाँ शक्तिशाली शरीर वाला यानी मर्द, औरत के अधिकार स्वीकार करता होगा । आप ने अपने स्कूल के परिचय के लिए जो पॉमफ़्लेट प्रकाशित किया है, उसमें औरत के बारे में इस्लामी हुक़ूक़ के हवाले दिए हैं । मैं उम्मीद करती हूँ कि आप की कथनी-करनी में कोई भिन्नता न होगी ।

"देखिए, आप बीच में बोल पड़े तो बात कहाँ से कहाँ पहुँच गई । मैं अर्ज़ कर रही थी कि बस्ती के सर्वप्रिय ग़रीब साहब अपना खाना अपने हाथ से पकाते हैं । अजीब नादान व्यक्ति हैं । एक मुद्दत हो गई अपना खाना पकाते हुए । लेकिन मैंने अचानक एक दिन देखा कि हज़रत को खाना पकाना आता ही नहीं । चूल्हे में लकड़ी लगाने और आग जलाने की तमीज़ नहीं, तमीज़ क्या आए । चूल्हा भी कहीं हो । चंद ईंटें नीचे-ऊपर रख लीं । उन्हीं पर पका लिया । दाल-तरकारी के बारे में तो कुछ नहीं कह सकती, क्योंकि इसका संबन्ध

चखने से है । हाँ, रोटियाँ देखी हैं, न पक्की न कच्ची, धुँआँनी-सी । यह है आप के प्रिय ग़रीब साहब का भोजन । इस अर्थ में बेशक वे ग़रीब हैं ।

"यही ग़रीबी कपड़े-लत्तों में देखी । कुर्ता-पाजामा फटता है तो ख़ुद सीने और पेवन्द लगाने बैठ जाते हैं । गाँव में भाई कहने वाली न जाने कितनी बहनें होंगी, मगर मैंने किसी को न देखा जो आकर कहती— "ग़रीब भाई ! लाइए मैं सी दूँ ।" रहा रहना और रात बसर करना तो इसके लिए स्कूल का बाहरी 12 फ़ीट लम्बा-चौड़ा कमरा। यह कमरा उनका आफ़िस भी है और घर भी । स्कूल के काम से छुट्टी हुई, काग़ज़ात एक आलमारी में बन्द किए, मेज़-कुर्सी एक तरफ़ खिसका दी । चारपाई बिछाई और बिस्तर पर पड़ गए या कमरा बन्द करके बाहर निकल गए । कहाँ निकल गए ? लड़कियों के सरपरस्तों के पास । बहाना यह कि फ़ीस वसूल करने आए हैं, मगर सुना है कि वहाँ जाकर उपदेश दिया करते हैं । कहते हैं कि भई अपनी संतान को जैसा बनाना चाहते हो, वैसे ख़ुद बन जाओ ।

"ग़रीब साहब यह तो दूसरों से कहते हैं, मगर ख़ुद हज़रत का क्या हाल है ? मैंने कई बार कहा हजामत तो समय पर बनवा लिया करो । दफ़्तर में हर प्रकार के लोग आते हैं । आप को 'झड़ूस' बना देख कर दिल में क्या कहते होंगे । ग़ौर कीजिए मैंने इस शब्द का प्रयोग एक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए किया था । आप कहते हैं कि मैंने यह शब्द कहकर उनकी पोज़ीशन को क्षति पहुँचाई, लेकिन ग़रीब साहब इससे लुत्फ़ लेते हैं । कृपा करके पहले आप दोनों यह भिन्नता दूर कर लें, फिर मुझ से शिकवा करें ।

"अच्छा मान लीजिए कि मैंने ग़रीब साहब जैसे महान व्यक्ति को झड़ूस कहा तो क्या ग़लत कहा । आप उनसे पूछिए, उनका नाम झड़ूस रख दिया जाए तो क्या वह इनकार करेंगे ? मेरा दावा है कि वह इनकार नहीं करेंगे । इनकार करेंगे तो झूठ बोलेंगे ।

"फिर यह कि अगर उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन कीजिए तो अनुमान लगा सकते हैं कि वे बचपन में भी इसी लापरवाही से रहते रहे होंगे । अपने व्यक्तित्व की तरफ़ से लापरवाही उनकी आदत बन गई । अब उन्हें इसका एहसास भी नहीं होता कि वे क्या खा रहे हैं, क्या पहने हुए हैं और किस हाल में रह रहे हैं । मेरा तो यह भी अनुमान है कि उनके बचपन में उनके साथी लड़के उनको इसी शब्द से नवाज़ते रहे होंगे । कुछ शक नहीं कि उन्होंने शब्द 'झड़ूस'

जो लुत्फ़ हासिल किया वह मेरे अनुमान का प्रमाण हो। ज़रा आप उनका चपन कुरेदिए जाकर । मैं मनोविज्ञान की छात्रा रही हूँ । मुझे अपने इल्म पर रोसा है । मैंने जो कुछ पढ़ा है और मेरा जो अध्ययन है उसके आधार पर ा दावा है कि उनके बचपन में उनका नामे-नामी "झडूस" होगा । यहाँ आकर ीब साहब हो गए । मैं एक मनोवैज्ञानिक उदाहरण पेश करूँ, एक फ़ौजी को ैल्यूट" का आदेश दिया जाता है तो उसका हाथ आदतन माथे पर पहुँच ाता है । अगर आप को यह तमाशा देखना हो तो मैं आपको दिखा सकती । कल आप और ग़रीब साहब मेरे ग़रीबख़ाने पर पधारें । मैं बातचीत के रान अचानक ही किसी वक़्त झडूस कहूँगी, उस वक़्त उनकी ज़बान से सहसा ɛ शब्द निकलेगा, जो वह इसके जवाब में लड़कियों और लड़कों को कहते होंगे । मैनेजर साहब क्या आप इसके लिए तैयार हैं ? आप बोलने के ाए बेताब हो रहे हैं । मेरा जवाब पूरा हो गया, अब क्या फ़रमाते हैं, आप ?"

जिस तरह मेरी शिकायत सुनकर प्रिंसिपल साहिबा ने लम्बी साँस ली थी; ी तरह उनका जवाब सुनकर मैंने भी एक लम्बी-सी साँस ली । ज़ाहिर है उनका जवाब बेहद सख़्त था । इससे मालूम हुआ कि वे एक सख़्त मिज़ाज ारत हैं । और यह कि उन्हें बात करना, बात की काट करना, अपनी बात अड़ना और शिकायत के जवाब में सफ़ाई पेश करना ख़ूब आता है । मुझे ाका जवाब सुनकर यह भी एहसास हुआ कि उन्हें मर्दों से कुछ शिकायत है । बातों-बातों में उन्होंने कह भी दिया कि वे मर्दों से आबरू बचाने लिए भागीं । बड़ी तनख़्वाह छोड़ी और कम वेतन पर यहाँ आ गईं । हो कता है कि उन्हें मर्दों से नफ़रत भी हो । अतः उनसे बड़ी सावधानी से बातचीत ने की आवश्यकता है । मालूम ऐसा होता है कि शायद उन्हें मर्दों ने धोखा दिया है, इसीलिए वे अब तक अविवाहिता हैं । जी में आया कि पूछूँ— प ने अब तक शादी क्यों नहीं की, फिर डरा कि कहीं लेने के देने न पड़ ऐं और उनकी ज़बान से कुछ और सुनना पड़ जाए । मैं इसी असमंजस में कि प्रिंसिपल साहिबा ने पूछा, "क्या आप दोनों साहिबान कल आ रहे मेरे यहाँ ?" तो मैंने कह दिया— "आएँगे" । इसके बाद मैं वहाँ से चला या । ग़रीब साहब से मैंने कुछ न कहा । सोचा कि प्रिंसिपल साहिबा के ां कल उनके मनोविज्ञान का चमत्कार देखने के बाद ग़रीब साहब से सविस्तार ा-चीत करूँगा ।

ग़रीब साहब को हमारे यहाँ आए हुए दस वर्ष हो चुके थे । उस वक़्त वे

25 वर्ष के नौजवान थे ।

संयोग की बात कि उनकी मुझसे मुलाकात हो गई । मैंने परिचय पूछा, त
बोले— "मुझे ग़रीब कहते हैं ।" मैं समझा कि जैसे अमीर अहमद वग़ैर
नाम होते हैं, उसी तरह यह साहब ग़रीब अहमद हैं । तो बस मैं ग़रीब साहब
ग़रीब साहब कहकर बातें करने लगा । बातों-बातों में बच्चों की शिक्षा प
बात होने लगी । ग़रीब साहब सादा वेशभूषा में थे । उनकी बातें सुनीं, उनवे
विचार सामने आए, तो उनमें भी सादगी महसूस हुई । मैंने कहा कि स्कूल
के लिए मकान का मैं इन्तज़ाम कर दूँगा, बच्चों को पढ़ाने की ज़िम्मेदारी आ
ले लें । उन्होंने स्वीकार कर लिया । पहले तो बच्चों और बच्चियों को लेक
मेरे एक कमरे में बैठे । इसके बाद मेरे एक पुराने मकान में। फिर और उन्नी
हुई, तो पुराने मकान की मरम्मत करा दी । दो-तीन वर्षों में ही ग़रीब साह
अपनी सादगी, बेनियाज़ी और मेहनत की बदौलत बहुत लोकप्रिय हो गए
अब लड़कों और लड़कियों की संख्या इतनी ज़्यादा हो गई कि ग़रीब साह
के बस की बात न रही । मैंने उनसे मशविरा किया । बहुत कुछ सोच-विच
के बाद उन्होंने सुझाव दिया कि लड़कों और लड़कियों के स्कूल अलग-अल
बनें । मैंने शर्त रखी कि वे लड़कियों के स्कूल की ज़िम्मेदारी अपने सर लें
उन्होंने मनज़ूर कर लिया तो मैंने अपने पास से एक स्कूल बस्ती के एक किन
पर और दूसरा दूसरे किनारे पर बनवा दिया । लड़कों का स्कूल बस्ती के लो
को सौंप दिया । लड़कियों के स्कूल में मैं ख़ुद ग़रीब साहब के साथ दिलचस्
लेने लगा । यह ग़रीब साहब की दस वर्षों की मेहनत, निष्कपट-निःस्वार्थ व्यक्ति
और उनके बेदाग़ चरित्र का परिणाम है कि अब यही लड़कियों का स्कूल इण
के समकक्ष हो गया और सरकार की सहायता के बग़ैर चल रहा है । लड़
के स्कूल के लिए तो हमने शासन-मान्यता मनज़ूर कर ली, लेकिन जब लड़कि
के स्कूल की बात आई तो न ग़रीब साहब मान्यता प्राप्त कराने के लिए तैय
हुए और न मैं । क्योंकि फिर उसकी व्यवस्था हमारे हाथ में न रहती, अ
सच्ची बात तो यह है कि इस बालिका स्कूल के लिए हमें मिस एफ०एफ
सिद्दीक़ा जैसी प्रिंसिपल भी न मिलतीं जिससे मेरी यह बातचीत ग़रीब साह
के बारे में हुई और कल और अधिक बातचीत होगी । ग़रीब साहब जिस वेशभू
में पहले दिन तशरीफ़ लाए थे वही आज तक क़ायम थी । सबसे बड़ी ब
जो ख़ास तौर पर मैंने महसूस की, वह उनकी शाने-बेनियाज़ी थी । वही सा
कपड़े, वही सादा रहन-सहन । फिर यह कि यह सब "दस्ते ख़ुद दहाने ख़ुद

(अर्थात् अपना हाथ अपना काम)। कई बार मैंने कहा कि बेकार आप ज़हमत करते हैं । खाना पकाने की व्यवस्था हो जाएगी । पुराने कपड़ों की मरम्मत पर जो आप अपना समय नष्ट किया करते हैं, उसका भी हल निकल सकता है, लेकिन अपनी बेनियाज़ी और ख़ुद्दारी के कारण यह प्रस्ताव हरगिज़ मनज़ूर नहीं किया ग़रीब साहब ने । आख़िर आज मुझे प्रिंसिपल साहिबा की ज़बान से तीखी बातें सुननी पड़ीं । एक बार मैंने शादी की बात छेड़ी तो कह दिया, "मैनेजर साहब ! अगर आप ने आइन्दा मेरी शादी की बात छेड़ी तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा ।" मैं डरा कि ऐसा सस्ता और मेहनती व्यक्ति हमें कहाँ मिलेगा । फिर मैंने ज़िक्र ही नहीं किया । आज मैंने ग़रीब साहब से यह तो कहा कि कल प्रिंसिपल साहिबा के यहाँ चलना है, लेकिन यह नहीं बताया कि क्यों चलना है । पहले उन्होंने इनकार किया फिर मेरे बार-बार कहने पर उस वक़्त माने जब मैंने कहा कि गर्ल्स स्कूल के लिए आपस में कुछ मशविरा करना है ।

दूसरे दिन मैं प्रिंसिपल साहिबा के घर की तरफ़ चला । ग़रीब साहब मेरे साथ थे । गुमसुम बिल्कुल ख़ामोश । मैंने पूछा, "किस सोच में हैं आप ?" बोले— "सोचता हूँ कि एक ज़िद्दी और बेबाक औरत से आप को क्या मशविरा करना है ? प्रिंसिपल साहिबा जो मशविरा देंगी, उस पर इसरार करेंगी आप उनके सामने कुछ न बोल सकेंगे । फिर उनका रुख़ मेरी तरफ़ होगा । मेरी सादा ज़िन्दगी पर मनोवैज्ञानिक विवेचन करेंगी । यह विवेचन आप के लिए दिलचस्पी का कारण होगा और मेरे लिए एक उलझन । मैं जिस तरह रह रहा हूँ, उसमें कोई परिवर्तन लाना नहीं चाहता। मुझे यही तरीक़ा, यही सादगी और यही बेतक़ल्लुफ़ रिहाइश पसन्द है ।

मैंने कहा— "अल्लाह के बन्दे ! प्रिंसिपल साहिबा अगर आप को यह मशविरा देती हैं कि ज़रा अपने को ज़ाहिरी तौर पर सँवार लीजिए, तो इसमें क्या हरज है । ज़माना कितनी तरक़्क़ी कर गया है ।"

"तो इसका अर्थ यह है कि मैं तकल्लुफ़ में अपना समय नष्ट करूँ, मेरे अन्दर सफ़ाई-सुथराई की क्या कमी है । मैं अपने हाथों से अपना काम करता हूँ, इस पर उन्हें क्यों एतराज़ है । मैं अपने कपड़े ख़ुद धोता हूँ, अपना खाना ख़ुद पकाता हूँ और अपना बिस्तर ख़ुद लगाता हूँ । कम-से-कम आमदनी में गुज़र-बसर करता हूँ । कम से कम चीज़ें अपनी ज़रूरत के लिए रखता हूँ । आप मुझे बताएँ, यह मेरी ख़ूबी है या हिमाक़त ? आप मुझे जवाब दें, अगर

ज़रूरत की चीज़ें अधिक से अधिक इकट्ठा कर लूँ तो इस अधिक से अधिक की क्या सीमा है । मेरा ख़याल है कि अगर इंसान ज़रूरतों के पीछे पड़ेगा तो उनपर क़ाबू न पा सकेगा । अपने आस-पास ज़रूरतों का जंगल लगा लेना अच्छा है या जीवन के लिए जिन बुनियादी चीज़ों की आवश्यकता है उन पर बस कर लेना । औरत तो अपने आस-पास जंगल चाहती है । मेरे लिए यही बहुत है जो कुछ मेरे पास है ।''

ग़रीब साहब ख़ामोश हो गए । मुझे उनकी ये बातें भी क़ाबिले क़द्र मालूम हुईं । मैंने सोचा कि मैं प्रिंसिपल साहिबा के सामने ग़रीब साहब के ज़िन्दगी गुज़ारने के ढंग की पूरी तरह से हिमायत करूँगा । मैं प्रिंसिपल साहिबा से बात करने के लिए दिल ही दिल में अपनी तक़रीर को तरतीब देने लगा ।

रास्ते में मैंने पूछा— ''ग़रीब साहब ! प्रिंसिपल साहिबा ने आप पर शब्द 'झड़ूस' की जो फ़बती कसी थी, उस पर आपको ग़ुस्सा नहीं आया ! ग़ुस्से के बदले आपने लुत्फ़ उठाया । क्या इसका कोई पसेमंज़र हो सकता है ?''

मेरी इस बात का जवाब ग़रीब साहब ने सिर्फ़ यह दिया कि आप भी औरतों की बातों पर सोच-विचार की शक्ति बरबाद करते हैं । जब औरत की ज़बान खुलती है तो क़ैंची की तरह चलती है । वह सोच कर बात नहीं करती, जो मुँह में आता है, बक देती है । उसकी बात का बुरा मानना एक संजीदा और सज्जन व्यक्ति को शोभा नहीं देता । उलट कर जवाब दे दिया तो फ़ितना खड़ा हो जाए । चार व्यक्ति जानें, सब मर्द ही को इल्ज़ाम देंगे । आप अपने ही घर के मामलों पर ग़ौर कीजिए ।''

बातों-बातों में मेरी घरेलू ज़िन्दगी पर वार हुआ तो मैं हँस दिया, ''सच फ़रमाते हैं आप।'' यह तो मैंने ग़रीब साहब से कह दिया, लेकिन ख़ुद यह सोचता हुआ चला कि प्रिंसिपल साहिबा ने जो मुझ से कहा था कि शब्द 'झड़ूस' ग़रीब साहब की ज़िन्दगी का आईना है । देखना यह है कि उनके घर ग़रीब साहब का आपरेशन किस तरह होगा और प्रिंसिपल साहिबा उनकी ज़िन्दगी के पन्ने किस तरह उलटती हैं । उनका दावा है कि उन्होंने मनोविज्ञान के ज्ञान से जो कुछ सीखा है, उस पर उन्हें पूरा भरोसा है ।

फिर मैंने ग़रीब साहब से बातें नहीं कीं । प्रिंसिपल साहिबा का घर भी क़रीब आ गया था । वे प्रतीक्षा कर रही थीं । बैठक का दरवाज़ा इंतिज़ार कर रही निगाहों की तरह खुला हुआ था । दूर से ही जायज़ा लेने पर सलीक़ा ज़ाहिर

था । मैं ग़रीब साहब को लिए हुए बैठक में दाख़िल हुआ । बैठक का वह दरवाज़ा जो सहन में खुलता था, उसके पास मुझे कोई व्यक्ति महसूस हुआ । प्रिंसिपल साहिबा के सिवा और कौन हो सकता था ? मैंने तेज़ आवाज़ से 'अस्सलामु अलैकुम' कहा । 'व अलैकुमुस्सलाम'– प्रिंसिपल साहिबा की आवाज़ आई ।

"तशरीफ़ रखिए !" कुर्सी की ओर इशारा करते हुए प्रिंसिपल साहिबा ने कहा ।

(2)

बैठक में छोटी-सी मेज़ के पास दो कुर्सियाँ पड़ी थीं । मेज़ पर एक हलका गुलाबी कपड़ा, "टेबिल कवर" के तौर पर पड़ा था । उसके ठीक बीचों-बीच पीले रंग की तारकशी से दिल की तस्वीर कढ़ी हुई थी । उसी के पास "काफ़िर हयात" काले रंग की तारकशी से कढ़ा हुआ था । मेरी नज़रें उस पर जम गईं । मैं झुक कर बड़े ग़ौर से देखने लगा और सोचने लगा— "मनोविज्ञान की महिला का पीले धागे से दिल की तस्वीर और काले धागे से "काफ़िर हयात" का शब्द काढ़ना कुछ न कुछ अर्थ रखता है । यह विचार आते ही अनुभव हुआ कि कहीं यह पीले रंग का दिल भी ग़रीब साहब पर व्यंग न हो । मैंने निगाहें उठाईं, ग़रीब साहब को देखा, वे सीधे बैठे थे । मगर उनकी नज़रें भी दिल पर थीं । मैंने जैसे ही उन्हें देखा, वे कुर्सी से उठ खड़े हुए । "बस अब मैं चला" मैंने हाथ पकड़ कर फिर कुर्सी पर बिठा दिया । "बेवक़ूफ़ आदमी ! यह क्या सभ्यता है, वह तो कहिए प्रिंसिपल साहिबा ने आप का वाक्य नहीं सुना वरना आप पर नुकता-चीनी का एक और बहाना उन्हें मिल जाता ।"

मैंने बिलकुल धीमी आवाज़ में यह कहा था लेकिन पर्दे के दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई– "मैंने सुन लिया" और अब हमारी यह हालत कि काटो तो ख़ून नहीं बदन में । प्रिंसिपल साहिबा ने फ़रमाया "मैं अभी चाय लाती हूँ । इतनी देर आप फ़ातिमा से बातें करें ।"

प्रिंसिपल साहिबा के यह कहते ही सात-आठ साल की एक बच्ची एक क़ापी लिए हुए बैठक में आई और उसने हमें सलाम किया ।

ग़रीब साहब उसे देख कर खड़े हो गए, "अरे बिलकुल वही....." ग़रीब साहब की ज़बान से सहसा निकला और वे कुछ सोच कर चुप हो गए । उसने कहा— "एक कहानी सुनाऊँ ?"

ग़रीब साहब को मैंने देखा । उन्हें जैसे कुछ होश ही न था । मैंने कहा, "हाँ बेटी ! सुनाओ कहानी ।"

फ़ातिमा ने कापी का पहला पन्ना उलट दिया दूसरे पन्ने पर पतझड़ के कारण नष्ट होने वाले एक पेड़ की तस्वीर थी । जिसकी शाखों पर एक घोंसला बना हुआ था । फ़ातिमा ने कहानी आरम्भ की—

बहुत दिनों की बात है । एक था लड़का और एक थी लड़की, दोनों एक मदरसे में क़ुरआन पढ़ते थे । उनमें बड़ी दोस्ती थी । एक दिन की बात है, दोनों खेलते-खेलते एक पेड़ के पास पहुँचे, पेड़ पर घोंसला देखा । लड़के को शरारत सूझी, वह पेड़ पर चढ़ गया । घोंसले में चिड़िया का एक बच्चा था । लड़के ने बच्चे को उठा कर कुर्ते की जेब में रख लिया । इतने में चिड़िया आ गई । वह चूँ-चूँ करके कुरते की जेब की तरफ़ झपटी, मगर लड़के ने उसे भगा दिया । पेड़ से उतर कर दोनों चले तो चिड़िया चूँ-चूँ करके उनके सरों पर उड़ती हुई साथ चली ।

लड़की बड़ी नर्म दिल थी । उसने लड़के से कहा— चिड़िया का बच्चा छोड़ दो । अल्लाह से डरो । लड़का न माना और भागा । लड़की मना करती रही । रास्ते में बच्चा कुरते से गिर पड़ा । लड़के को ख़बर भी न हुई । लड़की पीछे-पीछे थी । उसने देखा— बच्चे को चोट लग गई थी । उसने लड़के को पुकारा— "तूने यह क्या किया ? जिस तरह तूने चिड़िया का घोंसला उजाड़ा है, कहीं अल्लाह मियाँ तेरा घर भी न उजाड़ दें । झड़ूस कहीं के !"

लड़की कहानी ख़त्म करके चुप हो गई । शब्द झड़ूस सुनते ही ग़रीब साहब के शरीर में अचानक हलचल पैदा हुई । उनकी ज़बान से एकाएक निकला "झोंपड़ी ठहर तो ।" यह कहकर फ़ातिमा के सिर के बाल पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया । अचानक पर्दे के अन्दर से आवाज़ आई— "ख़बरदार ! ग़रीब साहब ! बच्ची के बाल न पकड़िएगा ।"

ग़रीब साहब का हाथ रुक गया । प्रिंसिपल साहिबा ने फ़ातिमा को अन्दर बुला लिया । इसके बाद प्रिंसिपल साहिबा ने शानदार चाय पेश की । चाय पीते हुए मैंने बातचीत शुरू की—

"प्रिंसिपल साहिबा ! मैं कुछ समझ न सका कि बच्ची से कहानी सुनकर ारीब साहब खो क्यों गए ? और शब्द झडूस सुनकर बच्ची के सिर के बाल यों पकड़ने चाहे और उसे झोंपड़ी क्यों कहा ! क्या यह सब ग़रीब साहब ी ज़िन्दगी का कोई पसे-मंज़र है !"

"मैं पसे-मंज़र-वसे-मंज़र नहीं जानती । मैंने आपसे अर्ज़ किया था कि मैं नोविज्ञान की छात्रा रही हूँ । मेरा अनुमान सही निकला । मैंने अर्ज़ किया ा कि शायद इन हज़रत को बचपन में कोई झडूस कहता होगा । अब सुबूत भाप के सामने है । जवाब में ये झोंपड़ी कहते थे । मेरे इल्म (ज्ञान) ने मुझे ाह भी बता दिया था कि यक़ीनन ये लड़की के बाल पकड़ेंगे । माफ़ कीजिएगा । र्द चाहे बच्चा ही क्यों न हो, वह औरत से हर क्षेत्र में शक्तिशाली होता ै । वह औरत के मुक़ाबले में हमेशा ताक़त से काम लेता है । आप के ग़रीब ाहब भी तो आख़िर मर्द ही हैं, माशाअल्लाह ! औरत के मुकाबले में मर्दानगी देखाने में पीछे क्यों रहने लगे।"

मैं प्रिंसिपल साहिबा की विलक्षण बौद्धिक शक्ति और उनके अनुमान की हुँच देखकर दंग रह गया । दिल ही दिल में कहने लगा— बड़ी विदुषी महिला ै । ग़रीब साहब अपने ऊपर एतराज़ सुनकर कुछ न बोले तो मैंने प्रिंसिपल ाहिबा से कहा—

"मैंने अर्ज़ किया था कि फ़ातिमा की सुनाई हुई कहानी, जिसे स्पष्ट है के आपने ही उसे सुनाया होगा, ग़रीब साहब की बीती ज़िन्दगी की कहानी ै ? इसका आपने जवाब नहीं दिया ?"

"यह पहेली मैं हल नहीं कर सकती, मैं तो बच्ची को अख़्लाक़ी कहानियाँ ुनाती हूँ । तस्वीरें बनाकर उसके ज़हन में बिठाती हूँ । मेरा उद्देश्य यह है कि ाच्ची के दिल में दूसरों की तरफ़ से नरमी और अल्लाह का डर पैदा हो । ारा ख़याल है कि इंसान जो ज़ुल्म और अत्याचार करता है, उसका कुछ-न-कुछ ादला उसे इस दुनिया में भी मिल कर ही रहता है । वैसे हमारा-आप का वेश्वास यही है कि बदले का असल दिन आख़िरत का है ।"

"तो क्या आप का अन्दाज़ा यह है कि ग़रीब साहब ने बचपन में चिड़िया े साथ यह शरारत की होगी । इस शरारत का बदला, हें इस दुनिया में मेला होगा या मिलेगा ?"

"मैनेजर साहब ! मैंने अर्ज़ किया कि यह तो मेरी शिक्षा की शैली है ।

मैं शिक्षा प्रणाली में बच्चों को ज़िन्दगी के विभिन्न क्षेत्रों की कहानियाँ सुनात रहती हूँ । अब अगर कहानी का प्लाट कहीं किसी की ज़िन्दगी पर फ़िट ह जाए तो अनुमान-अनुमान ही है । यह तो आप ग़रीब साहब से पूछिए । व क्यों इस कहानी से प्रभावित हुए । उनसे यह भी पूछिए कि फ़ातिमा को देखक उन्होंने यह क्यों कहा कि 'अरे बिल्कुल वही.....।'' एक पल ख़ामोशी व बाद प्रिंसिपल साहिबा ने कहा—

''मनोविज्ञान का तो यह कहना है कि उनके बचपन में कोई लड़की फ़ातिम की शक्ल की थी, उससे उन्हें लगाव रहा होगा । आज अचानक उसकी हमशक्ल देखी तो अचानक उनकी ज़बान से ये शब्द निकल गए । अब आप इनसे ह पूछें । मैं वास्तविकताएँ तो बयान नहीं कर सकती, अनुमान और वास्तविकत में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ होता है ।''

ग़रीब साहब अभी तक ख़ामोश थे । मैंने उनकी ओर देखा, कहने लगे— ''आप इसीलिए मुझे यहाँ लाए थे । अगर यही मक़सद था तो वह पूरा ह गया । मेरा जो अपमान हुआ सो हुआ । अब तशरीफ़ ले चलिए । मैं तो य समझ रहा था कि आप स्कूल के बारे में कुछ मशविरा करेंगे । उसका ज़िक्र तक नहीं हुआ । अच्छा ख़ुदा हाफ़िज़, इजाज़त दीजिए, मुझे ज़रूरी काम है वैसे भी मेरा समय बड़ा क़ीमती है, मुझे बेकार हँसी-मज़ाक में अपना दिमा नहीं खपाना है ।''

ग़रीब साहब यह कह कर उठ खड़े हुए । सलाम किया और बैठक-से निकल गए । मैं उन्हें देखता रह गया । फिर प्रिंसिपल साहिबा से कहा, ''यह मज़ाव अच्छा नहीं रहा । अपने मनोविज्ञान के गुमान में आपने यह भी लिहाज़ किया कि ग़रीब के दिल पर क्या बीतेगी । वास्तव में उस बेचारे का अपमा हुआ । मैं यह नहीं समझता था ।''

''अजीब बात है, मैनेजर साहब ! मेरे घर में कोई मर्द नहीं है, मैंने सोच था कि जब तक मैं चाय बनाऊँ, तब तक आप लोग बच्ची से बात करें मुझे पता न था कि एक कहानी ऐसी बेलुत्फ़ी पैदा कर देगी । कहानी तो कहान ही होती है । वह बहुत से लोगों की ज़िन्दगी पर फ़िट हो सकती है । रह ग़रीब साहब का मामला तो यह चोर की दाढ़ी में तिनका वाली बात हुई यह शख़्स भी अजीब पहेली नज़र आता है । न तो कुछ अपनी कहता न दूसरों की सुनता है । यह क्या इंसानियत है कि अकेले फिर रहे हैं यूसुफ़-बेकारव

होकर । हर वक़्त काम, हर वक़्त वही स्कूल की फ़िक्र, वही एक धुन । हैरत है कि दस वर्षों से एक ही ढंग पर जीवन-बसर किए जा रहे हैं और उकताते भी नहीं । कभी तो कुछ परिवर्तन होना चाहिए । मेरी राए है कि आप ग़रीब साहब की ज़िन्दगी में बदलाव पैदा करने की कोशिश करें । ग़रीब साहब आदमी काम के हैं; बशर्ते कि आदमी बन जाएँ ।''

''देखिए, प्रिंसिपल साहिबा ! आप जिस बेबाकी से बात करती हैं, उसकी शिकायत ग़रीब साहब रास्ते में मुझसे कर चुके हैं । आपको उनके आदमी होने में क्या शक है । सादा ज़िन्दगी तो अच्छी चीज़ है । 'ऐ ज़ौक़ तकल्लुफ़ में है तकलीफ़ सरासर ।' वह इसी पर अमल करते हैं । आप ने बातों-बातों में फिर आदमी बन जाने की फबती कस दी ।''

''मैनेजर साहब ! ग़रीब साहब की ख़िदमत में मेरी तरफ़ से शुक्रिया अदा कीजिएगा कि उन्होंने छः महीने में आज मेरे बारे में आप से शिकवे के तौर पर ही सही, कुछ कहा तो । तिरछी नज़र से देखते हैं, देखते तो हैं, वरना स्कूल में तो यह हालत है कि मैने कुछ अर्ज़ किया तो फ़रमाया 'लिखकर दीजिए', बस मेरे लिखे पर आदेश दे दिया कि ऐसा होना चाहिए, आख़िर मर्द जो ठहरे ।''

''देखिए आप ने फिर बात ख़त्म की तो अपनी आदत के मुताबिक़ एक आक्रमण मर्द पर कर दिया । क्या मनोविज्ञान का विद्यार्थी आप पर यह वाक्य फिट नहीं कर सकता कि आप की ज़िन्दगी के पसे-मंज़र में किसी मर्द की बेवफ़ाई काम कर रही है ?''

''ख़ैर, आप जो समझें । बहरहाल हमारी आज की बातचीत का फल यह निकलना चाहिए कि ग़रीब साहब के अन्दर ज़िन्दगी पैदा करनी चाहिए ।''

''लेकिन कैसे ? ज़िन्दगी दरअसल पैदा होती है, शादी से । ग़रीब साहब के सामने शादी का नाम लेना जुर्म है । अगर आप के उभारने पर मैं छेड़ूँ तो वे आप पर एतराज़ कर सकते हैं कि प्रिंसिपल साहिबा को दूसरों की ज़िन्दगी की इतनी फ़िक्र है, मगर ख़ुद ? इस 'मगर ख़ुद' का जवाब क्या दूँ ।''

प्रिंसिपल साहिबा चुप रह गईं । उन्होंने कुछ न कहा । मैंने विदा ली और वहाँ से चला आया । मुझे अब ग़रीब साहब के बारे में खोज पैदा हो गई । यह भी शक होने लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि ग़रीब साहब और प्रिंसिपल साहिबा एक-दूसरे को पहले से जानते हों, वरना ग़रीब साहब को प्रिंसिपल

साहिबा की बेबाकी पर पूर्णरूप से विरोध करना चाहिए था । मुझे याद आया कि एक बार प्रिंसिपल साहिबा के ज़िक्र पर मैंने कहा था कि ऐसी बेबाक शिक्षिका को हटा दिया जाए । ग़रीब साहब ने इसका विरोध किया था । बहरहाल एक पहेली मेरे सामने थी । जिसे हल करने में मुझे दिलचस्पी महसूस होने लगी ।

(3)

मैं एक बात सुलझाने के लिए ग़रीब साहब को प्रिंसिपल साहिबा के घर ले गया था । वहाँ मामला और उलझ गया । प्रिंसिपल साहिबा के घर एक बच्ची को देखकर ग़रीब साहब का चौंक जाना, सहसा उनकी ज़बान से निकलना कि "अरे बिल्कुल वही..... ! और फिर कुछ सोच कर चुप हो जाना, फिर बच्ची का एक कहानी सुनाना, इस कहानी से ग़रीब साहब का परेशान होना आदि । इन सब घटनाओं से मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इन बातों के पीछे ग़रीब साहब की कोई ऐसी कहानी है, जिसे वे अब तक छिपाए हुए हैं । मैंने सोचा कि यह कहानी खुल कर सामने आना चाहिए । अत: एक दिन मैंने अकेले में ग़रीब साहब से मुलाक़ात की और उनसे कहा—

"ग़रीब साहब ! यह बात समझ में नहीं आई कि उस मासूम बच्ची को देखकर आप चौंक क्यों गए । आप ने यह क्या कहा कि 'अरे बिल्कुल वही.....।' फिर जब उस बच्ची ने एक लड़के और लड़की की कहानी सुनाई तो आप घबरा गए । आपने लड़की को 'झोंपड़ी' कहकर क्यों पुकारा और फिर आप पर ऐसा पागलपन छा गया कि आप प्रिंसिपल साहिबा के यहाँ से उठकर चले आए । यह सब मेरे लिए पहेली है । मैंने जितना भी सोचा मुझे आप से हमदर्दी पैदा हो गई— मैं समझता हूँ कि उस लड़की या प्रिंसिपल साहिबा से या तो आप का कोई ख़ानदानी रिश्ता है या आप की ज़िन्दगी की कोई दुखद घटना उनसे जुड़ी हुई है जिसे आप हम लोगों से 10-11 साल से छिपाए हुए हैं, फिर यह कि आप शादी भी नहीं करते । शादी का नाम आप के सामने लिया जाता है, तो आप गर्म हो जाते हैं । मेरे दोस्त ! आप मुझे बताइए, मैं तो आपका भाई हूँ । हो सकता है कि मैं आपकी कुछ मदद करूँ ।"

यह लम्बा भाषण देकर मैं ख़ामोश हो गया । ग़रीब साहब को देखने लगा । इस वक़्त उनपर ऐसी कैफ़ियत तारी हो गई, जो मैंने पहले कभी नहीं देखी थी—जैसे किसी व्यक्ति की चोरी पकड़े जाने पर उसका चेहरा फीका पड़ जाता

है, जैसे कोई इक़रारी मुजरिम हो या जैसे किसी को रंगे हाथों गिरफ़्तार कर लिया गया हो ।

यह कैफ़ियत थी ग़रीब साहब की । उनके चेहरे पर एक रंग आता और एक रंग जाता था । मैं ग़रीब साहब के चेहरे का उतार-चढ़ाव देखता रहा, समझ गया कि ज़रूर कोई हादसा पेश आया है जिससे घबरा कर ग़रीब साहब घर से भागे और ऐसी जगह आकर रहे कि ग़ालिब के कथनानुसार—

"रहिए अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो" और अगर कोई हो भी तो— "मेहरबाँ कोई न हो, नामेहरबाँ कोई न हो ।"

मेरे दिल में ग़रीब साहब के लिए हमदर्दी की ऐसी भावनाएँ उभरने लगीं, जैसी एक बड़े भाई के दिल में छोटे भाई के लिए ऐसे मौक़ों पर उभरती हैं ।

फिर मैंने देखा कि उन्होंने अपने दिल पर कुछ इस तरह हाथ रखा जैसे दिल से हूक उठी हो और वे उसे दबा रहे हों । उन्होंने जवाब तो कुछ न दिया हाँ, उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे । मैंने उनको रोने दिया । फिर मैंने सोचा कि हज़रत की ज़बान से कुछ कहलवाना ज़रूर चाहिए, वरना कहीं ऐसा न हो उनका यह तास्सुर दिल की तरफ़ रुख़ करे और फिर लेने के देने पड़ जाएँ । चुनांचे मैंने कहा—

"ग़रीब साहब ! पिछली ज़िन्दगी में जो हो गया, उससे इंसान को अनुभव तो ज़रूर लेना चाहिए, लेकिन उसे दिल में पाले रखना किसी तरह भी उचित नहीं । इसी का नाम कोफ़्त और कुढ़न है और ऐसे ही अवसरों पर सब्र की ताकीद की गई है । ऐसे समय पर यह समझना चाहिए कि अल्लाह को यही मनज़ूर था और हमारे लिए इसी में कुछ बेहतरी थी । किसी दुर्घटना के राज़ को हम नहीं समझ सकते, ख़ुदा समझता है । यह हमारा-आपका अक़ीदा भी है— क्या ख़याल है आप का ?"

"सच कहते हैं, आप !" ग़रीब साहब की ज़बान से निकला और वे अपने आँसू पोछने लगे ।

"तो सुनाइये अपनी कहानी ?" मैंने इस तरह बेसाख़्ता कहा कि ग़रीब साहब को अपनी कहानी सुनानी पड़ी—

उन्होंने कहना शुरू किया–"प्रिंसिपल साहिबा के यहाँ आप ने जो छोटी बच्ची देखी थी, बचपन में मेरी ज़िन्दगी में भी इसी शक्ल की एक लड़की

थी। फ़ातिमा फ़िरदौस नाम था उसका । मेरे पड़ोस में रहती थी । हम दोनों एक स्कूल में पढ़ने जाते थे । घर आकर साथ सबक़ याद करते, साथ खेलते । आप जानते हैं कि बच्चे खेल ही खेल में लड़ पड़ते हैं, हम दोनों भी लड़ते थे, फ़ातिमा जब बहुत ग़ुस्से में होती तो मुझे झड़ूस कह देती थी । इसके जवाब में मैं उसे 'झोंपड़ी' कहता और उसके बाल पकड़ कर खींचता । फिर उस दिन हम दोनों रूठे रहते, दूसरे दिन भूल जाते और फिर साथ खेलने लगते । अल्लाह-अल्लाह कितनी भोली-भाली दुनियाँ में थे हम दोनों !

प्रिंसिपल साहिबा के यहाँ आप ने उस छोटी-सी बच्ची से जो कहानी सुनी थी कि एक लड़के ने चिड़िया के घोंसले को उजाड़ दिया था, तो यही घटना मेरे बचपन में भी हुई थी । फ़ातिमा फ़िरदौस बड़ी नेक थी, उसने मुझे बहुत डाँटा था ।''

''ज़रा ठहरिए ग़रीब साहब ! मैंने ग़रीब साहब को बीच में रोककर पूछा, ''उस वक़्त आपका नाम यही ग़रीब साहब था या कुछ और ?''

ग़रीब साहब ने बताया कि ''मैं घर का तो वाक़ई ग़रीब था, लेकिन मेरा असल नाम सईद है । फ़ातिमा फ़िरदौस मालदार माँ-बाप की बेटी थी । स्कूल की शिक्षा के बाद उसकी उच्च्य शिक्षा हुई । मैं बहुत कम स्कूली शिक्षा हासिल कर सका । हाँ, मैंने अध्ययन बहुत किया । जो किताब हाथ आ गई, मैंने पढ़ी । फ़ातिमा फ़िरदौस क्लास पर क्लास पास कर रही थी और मैं जहाँ जाता नई-पुरानी किताबें खोजता और पढ़ता । फ़ातिमा के ग्रेज़ुएट होते-होते न जाने कितनी लाइब्रेरियाँ मैं अपने दिमाग़ में उतार चुका था ।''

''ज़रा ग़रीब साहब या सईद साहब यह बताएँ कि आप रोज़ी-रोटी के लिए क्या करते थे ?''

''यही जो यहाँ करता हूँ । मैं अपने घर के आस-पास छोटे-छोटे बच्चों को गिल्ली-डण्डा और दूसरे वाहियात खेल खेलते देखता, गाली-गलौज सुनता तो दिल ही दिल में कुढ़ता। जब मुझे शऊर हुआ तो मैंने बच्चों को अपने आस-पास इकट्ठा करना शुरू किया । उनके माँ-बाप से मिला और उन्हें इसके लिए राज़ी किया कि बच्चे मुझसे पढ़ा करें । मैं आपको बता दूँ कि ये वे बच्चे थे जो स्कूलों में पढ़ने नहीं जाते थे । अपने घर वालों के साथ घरेलू धंधे करते थे । मैं उनको पढ़ाने लगा । मेरे पढ़ाने में किताबी शिक्षा से अधिक ज़बानी शिक्षा थी और इसके साथ अमली शिक्षा थी । मैं जो बात ज़बानी

बताता, किताब से पढ़कर सुनाता, उस पर ख़ुद अमल करता, बच्चों से भी अमल कराता, गन्दे बच्चों को मैंने सफ़ाईपसन्द बना दिया। उन्हें नमाज़ सिखा दी। उनसे गाली-गलौज छुड़ा दी। इसका असर पब्लिक पर बहुत अच्छा पड़ा। फिर आप समझ सकते हैं, जिस तरह यहाँ मेरे पढ़ाने से तरक़्क़ी हुई, यही बात वहाँ भी हुई। मैं अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। मेरा घर स्कूल में बदल गया। फिर अलग से स्कूल भी बन गया। जैसे यहाँ आप देखते हैं।

उधर फ़ातिमा फ़िरदौस ने पढ़ाने की ट्रेनिंग हासिल की और एक गर्ल्स स्कूल में शिक्षिका हो गई। अब हम दोनों जवान हो चुके थे। मेरे और फ़ातिमा के माँ-बाप को अपने-अपने बच्चों की शादी की फ़िक्र हुई। मेरे सामने शादी की बात आई तो भविष्य के जीवन का एक नक़्शा दिमाग़ में आने लगा। मैं सोचा करता था कि अगर मुझे ऐसी पढ़ी-लिखी बीवी मिल जाए जो लड़कियों को इसी तरह शिक्षा दे, जिस तरह मैं लड़कों को दे रहा हूँ, तो हमारा समाज शिक्षा और नैतिक दृष्टिकोण से बहुत ऊँचा हो जाए।

यह सोचकर जब मैं रिश्तेदारों और जाने-पहचाने लोगों की लड़कियों में अपनी जीवन-संगिनी तलाश करता तो मेरी नज़र फ़ातिमा फ़िरदौस पर जाकर रुक जाती, लेकिन वह थी बड़े घर की लड़की और मैं ग़रीब। वह उच्च-शिक्षित और मैं साधारण शिक्षक। मेरा और फ़ातिमा का कोई जोड़ न था। मगर मैं चाहता था कि उससे मेरी शादी हो जाए। मैं ख़ुदा से दुआ भी करता था, मगर सच्ची बात यह है कि मेरा इस तरह सोचना बिलकुल शेख़ चिल्ली के मंसूबों की तरह था।

उसी ज़माने में एक ऐसी बात हो गई कि मैं सोचने की ताक़त खो बैठा। फ़ातिमा के लिए एक बड़े घराने से पैग़ाम आया। क़रीब था कि फ़ातिमा के माँ-बाप मनज़ूर कर लेते, लेकिन फ़ातिमा से पूछा गया तो उसने इनकार कर दिया। फिर जब उसकी सहेलियों के ज़रिए पूछा गया कि कैसे नौजवान के साथ शादी करना चाहती है, तो उसने बताया— ऐसे पढ़े-लिखे नौजवान से जो सईद की तरह नेक और चरित्रवान हो।

मेरे एक दोस्त ने फ़ातिमा का आधा वाक्य मुझ तक पहुँचाया। 'पढ़े-लिखे नौजवान' का वाक्य उसने छोड़ दिया और नेक चरित्रवान रहने दिया। मैं सुनकर उछल पड़ा। अब अगर लड़कियों के सरपरस्त भी मेरे लिए पैग़ाम भेजते तो मैं इनकार कर देता। मैं दिल ही दिल में गर्व करता कि फ़ातिमा मुझे पसन्द

करती है । मुझे यक़ीन हो गया कि मेरी दुआ क़बूल हो गई । मैंने अपने दोस्त के ज़रिए अपने माँ-बाप तक बात पहुँचाई । वे हँस दिए । मेरे माँ-बाप हँस दिए तो मुझे ज़िद्द-सी हो गई । मैंने कहलवा दिया कि अगर मेरी शादी फ़ातिमा से न हुई तो मैं यहाँ नहीं रहूँगा । बात तो नामुमकिन थी ही, लेकिन मुझे लाजवाब करने के लिए पैग़ाम दे दिया गया । फ़ातिमा के बाप ने साफ़ इनकार कर दिया । मैंने इनकारी जवाब सुना तो मुझपर बिजली-सी गिरी । भविष्य की जिन्दगी के लिए जो प्रोग्राम बनाया था वह ख़ाक में मिल गया । मैंने तय कर लिया कि अब शादी नहीं करूँगा । घर पर रह कर अपने तय-शुदा इरादे में कामयाब नहीं हो सकता था । घर वाले बहरहाल मुझे अकेला न छोड़ते । मैं बिना समझे-बूझे घर से निकल खड़ा हुआ । यहाँ आप के पास आ गया । ख़याल था कि फ़ातिमा को भूल जाऊँगा । मैं भूल भी गया था, मगर शायद मेरी क़िस्मत में चैन नहीं है । यह प्रिंसिपल औरत मेरे पीछे पड़ गई । मेरी समझ में यह नहीं आता कि उसे मेरे हालात का इल्म कैसे हुआ और यह फ़ातिमा की हमशक्ल बच्ची कौन है जो प्रिंसिपल के साथ रहती है । अब मुझे वह क़िस्सा याद आता है कि मैंने एक चिड़िया के घोंसले को वीरान किया था । चिड़िया की बद्दुआ से मेरी ज़िन्दगी वीरान हो गई । अल्लाह मुझे माफ़ करे ।''

ग़रीब साहब या सईद साहब अपनी आप बीती सुनाकर आँखों में आँसू भर लाए, और फिर जैसे 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे' कहते हैं, उसी तरह आँखें पोंछ कर हँस पड़े । मैंने कहा, ''कहीं यह प्रिंसिपल वही फ़ातिमा फ़िरदौस ही न हो । उसके सर्टीफ़िकेट में एफ़०एफ़० सिद्दीक़ा लिखा है ।''

''नहीं यह कोई और है । एफ़०एफ़० से धोखा नहीं खाना चाहिए । हो सकता है यह फ़ातिमा फ़िरदौस की कोई दोस्त हो, उसका साथ हो गया हो और बातों-बातों में फ़ातिमा ने मेरा क़िस्सा सुनाया हो ।

''लेकिन फ़ातिमा की हमशक्ल लड़की प्रिंसिपल साहिबा के पास कहाँ से आ गई ?'' मैंने ग़रीब साहब से सवाल किया ।

''इस गाँठ को खोलने की मैं कई महीनों से कोशिश कर रहा हूँ, मगर नहीं खुलती । अगर प्रिंसिपल एफ़०एफ़० सिद्दीक़ा फ़ातिमा फ़िरदौस होती तो वह मुझे इस तरह हरगिज़ ज़लील न करती । मुझे मूर्ख न बनाती । यह ठीक है कि वह मुझसे शादी नहीं कर सकी थी क्योंकि मैं ग़रीब था, लेकिन वह मुझसे हमदर्दी ज़रूर रखती ।''

"ग़रीब साहब ! मेरा ख़याल है कि फ़ातिमा फ़िरदौस ही प्रिंसिपल होकर यहाँ आई हैं । मेरा यह भी ख़याल है कि उनकी शादी किसी बड़े घराने में हुई है । यह बच्ची उन्हीं की है और यह जो आप कह रहे हैं कि वे आपको ज़लील करती हैं और बेवकूफ़ बनाती हैं तो दरअसल यह उनकी हमदर्दी ही है । फिर मेरा ख़याल यह भी है कि उन्हें शौहर की तरफ़ से दुख मिला है । इसीलिए वे मर्दों पर तंज़ करती रहती हैं ।"

"अगर ये वही हैं, तो मेरे सामने उनका पर्दा बरक़रार नहीं रह सकता था । हम दोनों साथ खेले हैं । पड़ोसी रहे हैं । एक-दूसरे के भरोसे के आदमी हैं ।"

"ग़रीब साहब ! वास्तव में जैसा कि प्रिंसिपल साहिबा कहती हैं, आप हैं ही नादान । साथ के खेले, पड़ोसी और भरोसे के आदमी होने का यह मतलब तो नहीं हो सकता कि इस नाते ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) का हुक्म टाल दिया जाए । क्या यह नाता ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) से बढ़कर है ? आप तो उनके लिए बहरहाल नामहरम हैं ।"

ग़रीब साहब, जिन्हें अब मैं सईद साहब कहूँगा, खिसियानी हँसी हँस दिए । मेरी दलील को उन्होंने मान लिया । इसके बाद मैं उनसे यह वादा करके उठा कि अपनी बीवी को प्रिंसिपल साहिबा के पास भेजूँगा, देखूँ ग़ैब के परदे से क्या प्रकट होता है ।

(4)

"मैनेजर साहब ! घटना यूँ नहीं है जैसी आपने बयान की है, या ग़रीब साहब ने आपसे कहा ।"

"अब आप उन्हें ग़रीब साहब क्यों कहती हैं जबकि मालूम हो चुका है कि उनका नाम सईद है ।"

"अच्छा सईद साहब ही सही । सईद साहब ने अपनी कहानी की अत्यन्त पेचीदा बात आप को बताई ही नहीं ।"

"तो क्या आप जानती हैं ?"

"शुरू से आख़िर तक ।"

"शुरू से आख़िर तक ! तो इससे पहले कि मैं आप से पूरी घटना सुनूँ,

आप से कुछ सवाल कर सकता हूँ ?''

''पूछिए, आप क्या पूछना चाहते हैं ?''

''पहली बात तो यह कि हमें यह शक हो रहा है कि फ़ातिमा फ़िरदौस आप ही हैं, क्या यह बात सच है ?''

''जवाब सुनिए, मैं फ़ातिमा फ़िरदौस नहीं हूँ ।''

''एफ़०एफ़० सिद्दीक़ा से क्या मतलब है ?''

''एफ़०एफ़० सिद्दीक़ा से धोखा न खाइये, मेरा नाम फ़ातिमा फ़ीरोज़ है ।''

''आपके साथ जो यह बच्ची है, कौन है ?''

''यह फ़ातिमा फ़िरदौस की भतीजी है ?''

''फ़ातिमा फ़िरदौस की भतीजी ।''

''जी !''

''यह आपके पास कैसे आई ? और फ़ातिमा फ़िरदौस से आपका क्या रिश्ता है ?''

''फ़ातिमा फ़िरदौस मेरी ट्रेनिंग स्कूल की साथी है । एफ़०एफ़० सिद्दीक़ा के अक्षर जो आपके लिए दिलचस्पी का कारण बने हैं, हमारे ट्रेनिंग स्कूल के माहौल में भी विनोद के कारण थे । मैं एफ़०एफ़० सिद्दीक़ा नम्बर एक थी, फ़ातिमा फ़िरदौस एफ़०एफ़० सिद्दीक़ा नम्बर दो । इन अक्षरों के एक समान होने का मनोवैज्ञानिक प्रभाव हम दोनों पर हुआ । संयोग यह हुआ कि जिस तरह फ़िरदौस की प्रारंभिक शिक्षा स्कूल में हुई थी, उसी तरह मैंने भी धार्मिक शिक्षा घर पर ही हासिल की इसके बाद स्कूल की तरफ़ रुख किया । इस तरह हम दोनों का मिज़ाज भी लगभग एक-सा था । मिज़ाज के एक होने से हम दोनों क़रीब होते गए । यहाँ तक कि जब ट्रेनिंग पूरी की और अलग-अलग स्कूलों में नियुक्ति हुई तो पत्र आधी मुलाक़ात का ज़रिया बने । कभी-कभी हम दोनों इकट्ठे भी होते थे । मैं दो-तीन बार फ़िरदौस के घर भी गई । आख़िरी बार जब मैं फ़िरदौस से मिलने उसके घर गई तो उसने बताया कि उसके लिए सईद साहब का पैग़ाम आया था, लेकिन बाप ने इनकार कर दिया। मैंने फ़िरदौस से सईद साहब के बारे में मालूम किया तो बताया कि वह एक निहायत नेक और सच्चरित्र नौजवान हैं । स्कूली शिक्षा कम है और घराना ग़रीब है । इसके सिवा और कोई बात नहीं हुई । आप जानते हैं कि लड़कियों के लिए पैग़ाम

आते ही रहते हैं । लड़कियों को इससे क्या दिलचस्पी, माँ-बाप जहाँ चाहे झोंक दें । आजकल पढ़ी-लिखी लड़कियों में जो आज़ादी उभर रही है, हमारे बचपन में वह न थी । कम से कम अपने और फ़िरदौस के बारे में अर्ज़ कर सकती हूँ कि ग्रेजुएट होने के बावजूद हम दोनों पूरे तौर पर हिन्दुस्तानी और हिन्दुस्तानी से बढ़कर मुस्लिम समाज की लड़कियाँ हैं । किसी को मालूम न था, सईद साहब के दिल में फ़िरदौस की चाहत इस दर्जा थी कि वह मियाँ मजनूँ की भूमिका अदा करने पर तुल गए । लेकिन मैं आप को बताऊँ कि वे अपनी नाकामी के कारण घर से नहीं भागे, बल्कि.....

"बल्कि..... !"

"सुनिए तो ! एक ऐसी लड़की की कल्पना कीजिए जो मुस्लिम घराने से संबंध रखती हो, बचपन में दीन की शिक्षा प्राप्त कर चुकी हो और वह ग्रेजुएट भी हो। इस्लामी सभ्यता को न केवल पसन्द करती हो, बल्कि इस्लामी सभ्यता और तौर-तरीके उसकी अमली ज़िन्दगी में भी पाए जाते हों, तो उसकी मिसाल ऐसी है जैसे अंधेरी कोठरी में हीरा रखा हो, और वह चमक रहा हो । अहमद जमाल एक नौजवान था । ग़रीब बाप का बेटा, लेकिन पढ़-लिख कर बीमा कम्पनी में मैनेजर हो गया था । उसके ग़रीब बाप के पास शिक्षित लड़कियों के बापों की ओर से पैग़ाम आने लगे और इस पेशकश के साथ कि दहेज में यह और यह होगा । बाप फूला न समाता । लेकिन वह ऐसी लड़की की तलाश में था जो मालदार बाप की बेटी हो और पढ़ी-लिखी भी ।

ख़ुदा जाने किसके कहने से बेटे का पैग़ाम फ़िरदौस के लिए दे दिया । फ़िरदौस के पिताजी ने पैग़ाम पाते ही स्वीकार कर लिया और तमाम माँगें भी स्वीकार कर लीं, जो आजकल हमारे समाज में ऐसे अवसरों पर की जाती हैं । यह आपके सईद साहब अभी वहीं थे । 6 साल से 11 साल तक के लड़कों और लड़कियों के स्कूल को चला रहे थे । उस स्कूल की इमारत तो बड़ी न थी, लेकिन मैदान एक बड़े क्षेत्र में था । बारात आई तो इसी अहाते में ठहरने का इंतज़ाम किया गया ।"

"यूँ कहिए कि सईद साहब के सीने पर मूंग दली गई ।"

"जी हाँ, अब तो मैं भी यही समझती हूँ कि सईद साहब के सीने पर मूंग दली गई । लेकिन फ़िरदौस को नहीं मालूम था कि सईद साहब उसके लिए दिल में क्या चीज़ पाल रहे हैं । निःसंदेह रक़ाबत का मामला बड़ा सख़्त होता

है । लुत्फ़ यह है कि बारातियों के ठहरने का प्रबन्ध भी इन्हीं महोदय को सौंपा गया था । हाए-हाए, ग़रीब के लिए कितनी बड़ी आज़माइश थी । सीने के अन्दर एक आग-सी लग रही थी और ख़ुद काम में व्यस्त थे । किसी शायर के कथनानुसार—

"सीने से जो लगाए हूँ ग़म वह कम नहीं है ।
लेकिन मैं यूँ दबाए हूँ जैसे कि ग़म नहीं है ।"

फ़िरदौस के पिता इतने मालदार तो न थे कि नवाबों की तरह दहेज का प्रदर्शन करते। फिर भी उन्होंने अपनी हैसियत से बढ़कर किया । लेकिन अहमद जमाल के बाप की नज़र में वह सब बेहैसियत ही रहा । उसे बहुत कुछ मिलने की उम्मीद थी । उसके अरमानों पर पानी फिर गया, तो ऐन ईजाबो-क़बूल के वक़्त (जब दुल्हन से उसकी मर्ज़ी मालूम की जाती है और दूल्हा-दुल्हन को क़बूल करने का इक़रार करता है) उसने ऐसी माँग की कि फ़िरदौस के पिता के पैरों तले की ज़मीन निकल गई, और लोग दंग होकर रह गए । उसने दहेज के उस सारे सामान के साथ पच्चीस हज़ार रुपये नक़द की माँग कर दी ।

अब फ़िरदौस के पिता की हालत देखने से ताल्लुक़ रखती थी । उनके हाथों के तोते उड़ गए । उनके पास जो कुछ था बेटी के लिए दांव पर लगा चुके थे । पच्चीस हज़ार रुपये उन्हें क़र्ज़ नहीं मिल सकता था । वे कलेजा पकड़े हाए-हाए कर रहे थे । बेबस होकर उन्होंने टोपी अहमद जमाल के बाप के पैरों में डाल दी कि इज़्ज़त आप के हाथ है, मगर वह ज़ालिम न पसीजा ।

साढ़े नौ बजे निकाह का वक़्त था । वह समय टल गया । दोपहर हो गई, ज़ोहर का वक़्त भी गया, अस्र की अज़ान हो चुकी थी कि अहमद जमाल के बाप ने अपने लोगों से कहा कि उठिए और वापस चलिए ।

बाराती अभी उठे नहीं थे कि सईद साहब साईकल पर सवार कहीं से बदहवास भागते हुए आए, उन्होंने साईकल रोकी, कैरियर से अपना थैला उतारा । उसमें से कुछ अदालती कागज़ात निकालकर अहमद जमाल के बाप के हाथ में दिए और वापस चले गए । अहमद जमाल के बाप ने एक नज़र काग़ज़ों पर डाली । ख़ुशी से उसकी बाछें खिल गईं । उसने निकाह की इजाज़त दे दी । कोई कुछ न समझा कि अदालत के काग़ज़ों में क्या जादू था ।

बाहर से गवाह अन्दर भेजे गए । ताकि लड़की की इजाज़त लेकर आएँ ।

पच्चीस हज़ार नक़द की माँग की ख़बर अन्दर भी पहुँच चुकी थी और इस ख़बर से फ़िरदौस की माँ पर दौरे पड़ने लगे थे । बात औरतों में भी फैल चुकी थी, फ़िरदौस ने भी सुन-गुन पा ली थी ।

अब जो गवाह अन्दर गए और उन्होंने फ़िरदौस से इजाज़त माँगी तो उसने साफ़ इनकार कर दिया। औरतों ने समझाया, माँ-बाप ने समझाया, बड़े बूढ़ों ने समझाया, लेकिन फ़िरदौस किसी तरह तैयार न हुई । उसका कहना था कि दौलत के पुजारियों के साथ उसका निबाह न हो सकेगा ।

आपको यह सुनकर हैरत होगी कि अहमद जमाल का बाप गवाहों के नाकाम वापस आने से ज़रा भी नाराज़ न हुआ । जी हाँ ! वह मुस्कराया और बारात वापस ले गया ।

''फिर ?''

''फिर मालूम हुआ कि उसने उसी दिन नवाब हसन ख़ाँ की लड़की से अपने बेटे का निकाह करा दिया ।''

''मेरा मतलब था कि फ़िरदौस का क्या बना ?''

''फ़िरदौस का क्या बना या सईद साहब का ?''

''क्या मतलब ?''

''बस यही तो चरमोत्कर्ष है इस कहानी का । अस्र के बाद कचहरी के कुछ लोग मुबारक बाद देने फ़िरदौस के बाप के पास आए । उनका ख़याल था कि निकाह हो चुका होगा । लेकिन जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि बारात वापस गई, तो एक साहब ने बताया— पच्चीस हज़ार का बाग़ भी उनके साथ गया ।

''क्या मतलब ?'' बहुत से लोगों की ज़बान से निकला । उन्हीं साहब ने बताया कि ''सईद के नाना ने एक बाग़ उसके नाम कर दिया था । वह आज सईद ने अहमद जमाल के नाम करा दिया।

''इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन, फिर क्या हुआ ?''

''फिर क्या बताऊँ क्या हुआ । सईद साहब की इस क़ुर्बानी का हाल लोगों को मालूम हुआ तो सभी ने राए दी कि बस अब इसी वक़्त अहमद जमाल की जगह सईद को बिठाकर निकाह कर दिया जाए । फ़िरदौस के बाप भी अब राज़ी हो गए । सईद साहब की तलाश की गई, तो मालूम हुआ कि वे

घर ही नहीं गए । किसी ने बताया साईकल से उस सड़क पर कहीं गए हैं— और हालत ऐसी थी कि चेहरा पीला था जैसे काटो तो ख़ून नहीं बदन में ।

मैनेजर साहब ! इसके बाद उस दीवाने का कहीं पता न चला । सईद के माँ-बाप भी रो-पीटकर बैठ रहे । सभी ने समझा कि कहीं डूब मरे। किसी को नहीं मालूम कि वहाँ का डूबा यहाँ उभरा है ।''

''मगर प्रिंसिपल साहिबा ! यह बच्ची जिसे आप फ़िरदौस की भतीजी कहती हैं, आप के पास क्यों रह रही है ?''

''हाँ ! यह भी सुनिए । फ़िरदौस का एक भाई था । यह उसी की लड़की है । कुछ दिनों के बाद फ़िरदौस के माँ-बाप का आगे-पीछे इन्तिक़ाल हो गया । फिर इस बच्ची की माँ भी अल्लाह को प्यारी हो गई और भाई पाकिस्तान चला गया । लड़की को फ़िरदौस ने पाल लिया ।''

''फिर ?''

''फिर क्या ?''

''यानी मेरा सवाल यह था कि यह लड़की आप के पास कैसे आई ?''

''दरअसल बात यह है कि जब मैं यहाँ आई, तो मैंने इन हज़रत को देखा उनका नाक, नक़्शा फ़िरदौस ने मुझसे बयान किया था, मुझे संदेह हुआ । मैं बक़र-ईद की छुट्टी में फ़िरदौस के घर गई । उससे ज़िक्र किया, तो उसने लड़की साथ कर दी । लड़की फ़िरदौस की हमशक्ल है । झडूस और झोंपड़ी के लक़ब और चिड़िया वाला क़िस्सा उसने मुझे बताया और कहा कि अगर वे हज़रत सईद साहब ही हैं, तो इसको देखकर ज़रूर चौकेंगे । अत: मैंने आप के सामने तजुर्बा किया । इस तजुर्बे ने साबित किया कि यह ग़रीब साहब दरअसल सईद ही हैं ।''

''अच्छा इतना और बता दीजिए कि फ़िरदौस की फिर शादी हुई या नहीं ?''

''शादी के पैग़ाम तो बहुत आए मगर फ़िरदौस ने शादी से इनकार कर दिया और कहा मैं यूँ ही रहूँगी ?''

''क्यों ?''

''जब उसे मालूम हुआ कि सईद को उससे इतनी मुहब्बत थी कि अपना बाग़ उस पर क़ुर्बान कर दिया, तो उस पर दीवानगी-सी छा गई । इश्क़ व मुहब्बत के नाम से तो वाक़िफ़ न थी, लेकिन ज़ाहिर हुआ कि किसी को किस

से इश्क़ कैसे हो जाता है ।''

''तो फ़िरदौस क्या करती है ?''

''सईद साहब के ग़ायब होने के बाद कुछ दिन तो इस इंतिज़ार में कटे कि शायद आज वापिस आ जाएँ, कल वापिस आ जाएँ । इसी में दो साल बीत गए । लोगों को विश्वास हो गया कि सईद ने कहीं जान दे दी । उसके माँ-बाप गुमशुदा बेटे के ग़म में पागल हो रहे थे । दूसरी तरफ़ फ़िरदौस के माँ-बाप अपने दुखों से ग्रस्त थे । वह इसी पीड़ा में घुल-घुल कर मर गए । फ़िरदौस की आँखों में रोने के लिए आँसू नहीं रह गए थे । वह अल्लाह का नाम लेकर उठी । सईद का स्कूल लावारिस पड़ा था । फ़िरदौस ने अपने दहेज का सामान बेचा । जो कुछ रक़म मिली उसे स्कूल में लगा दिया और अब सईद की इस यादगार की पुजारिन बनी हुई है । स्कूल फिर उसी शान से चल रहा है । मज़े की बात यह है कि यहाँ जिस तरह मुर्दा-रूह सईद के दम से यह स्कूल तरक़्क़ी पर है, उसी तरह वहाँ एक बेजान औरत फ़िरदौस भी सईद के स्कूल को चला रही है ।

वह सईद के माँ-बाप के साथ रहती है । सईद के बाग़ पर ही घर भर का गुज़ारा था, वह तो न रहा, अब फ़िरदौस को स्कूल से जो अमदनी होती है, उसी में सब खा-पी रहे हैं ।''

''अच्छा, अब यह बताइए कि इन दोनों मुर्दा-रूहों को ज़िन्दा कैसे किया जाए ?''

''यह बात फिर सोची जाएगी । इस समय तो यह बताइए कि अगर इन सारी बातों को सईद मियाँ पर ज़ाहिर कर दिया जाए तो क्या प्रतिक्रिया होगी ?''

''प्रतिक्रिया कुछ भी हो, ज़ाहिर तो करूँगा और उसको नसीहत करूँगा कि ऐ नादान तूने यह क्या बेवकूफ़ी की । ख़ुद को तो बर्बाद किया ही दूसरों को भी दुखी बना दिया । फिर कोई सूरत निकाली जाएगी । ठीक है न !''

''देखिए एकदम सब कुछ न कह दीजिएगा । अगर एक ही मीटिंग में आपने यह सब बता दिया तो सईद मियाँ दिमाग़ी सन्तुलन खो बैठेंगे । वे तो यह समझते हैं कि फ़िरदौस अपनी ससुराल में मज़े कर रही होगी ।''

''इतना मैं समझता हूँ । अच्छा, ख़ुदा हाफ़िज़ ! बाक़ी फिर.....''

(5)

मैं मौक़े की तलाश में रहा । जुमा के दिन मैंने सईद साहब को घेर लिया और बड़े जज़्बाती अन्दाज़ में कहा—

"सईद साहब ! कितने वर्षों से आप यहाँ हैं । इस बीच मेरे आप के ताल्लुक़ात कुछ इस तरह हो गए जैसे हम दोनों भाई-भाई हों ।"

"इसमें क्या शक है ।"

"और फिर यह कि मैं उम्र में आप से बड़ा हूँ ।"

"यह भी ज़ाहिर है" सईद साहब मुस्कराए ।

"तो बड़े भाई का छोटे भाई पर कुछ हक़ होता है ?"

"बेशक होता है ।"

"अगर मैं अपना हक़ आप से माँगू, तो आप का क्या फ़र्ज़ होगा ?"

"मैं कुछ न समझ सका कि आप मुझ से क्या चाहते हैं । मैंने इस 10-12 वर्ष के अर्से में ऐसी कोई बात नहीं की कि आप को मेरी वजह से शर्मिंदा होना पड़ा हो । फिर यह कि मैंने आपकी कोई नाफ़रमानी भी नहीं की । आप की हमदर्दियाँ मेरे साथ ऐसी रहीं कि 'बकरा बन जाना अच्छा, लेकिन छोटा भाई बनना अच्छा नहीं' वाली कहावत भी मुझ पर ठीक नहीं बैठती, अर्थात् मुझे छोटे भाई के समान होने का कोई मलाल नहीं। मुझे स्वीकार है कि मैंने अपने दिल की जो बात आप के सामने रखी, आपने निःसंकोच मान ली । अगर आप यह समझते हैं कि मेरी तरफ़ से कोई कोताही हुई है, तो आप फ़रमाएँ ।"

"अगर आप वाक़ई मुझे बड़ा भाई समझते हैं, तो मैं कहूँगा कि आप की तरफ़ से एक कोताही बराबर होती चली आ रही है । आप मुझ से उम्र में छोटे हैं, लेकिन सलाहियत में ज़्यादा । इसलिए मैं डरता हूँ कि अगर आप की कोताही आप पर ज़ाहिर करूँ तो आप को सद्मा पहुँचेगा ।"

"मैंने जानबूझ कर कोई कोताही नहीं की, लेकिन अगर मान लिया जाए कि मुझसे कोई कोताही हुई है, तो मैंने अपने ऊपर ज़ुल्म किया ।"

"जज़ाकल्लाह ! आप बहुत ही नेक नौजवान हैं; तो क्या इजाज़त है कि मैं आप के सामने वह बात रखूँ जो मुझे खटक रही है ।"

"ज़रूर इरशाद फ़रमाइए ।" सईद साहब ने कहा और घबरा से गए । मेरी तरफ़ बड़े ग़ौर से देखने लगे । कुछ घबराहट, कुछ हैरत उनके चेहरे से ज़ाहिर होने लगी । मैंने उनकी नज़रों से नज़रें मिलाईं और कहा—

"आप ने अपनी ज़िन्दगी के पूरे हालात मुझे नहीं बताए, मुझे आप से यही शिकवा है ।"

"पूरे हालात ?" सईद साहब के चेहरे पर घबराहट और हैरत कुछ और बढ़ी, बोले—

"अर्ज़ तो किए थे, जो कुछ अर्ज़ किया उसके अलावा मेरी ज़िन्दगी में कोई ऐसी बात नहीं जो चर्चा के योग्य हो ।"

"है !"

"क्या ?"

"यह कि फ़ातिमा फ़िरदौस की शादी के मौक़े पर जब लड़के वालों की तरफ़ से दहेज़ के अलावा पच्चीस हज़ार नक़द की माँग हुई थी, तो आप ने अपना बाग़ पच्चीस हज़ार के बदले लिख दिया और ख़ुद वहाँ से चले आए ।"

अचानक यह बात मैंने उनपर खोली तो सईद साहब की आँखों में आँसू आ गए । उनका चेहरा उदास हो गया । रुंधी हुई आवाज़ में बोले—

"यह बात आप को कैसे मालूम हुई ?"

"मुझे प्रिंसिपल साहिबा ने बताया ।"

"और उन्हें किसने बताई ?"

"फ़ातिमा फ़िरदौस ने ।"

"फ़ातिमा फ़िरदौस से उनका क्या सम्बन्ध ?"

"वे दोनों एक साथ ट्रेनिंग स्कूल में थीं । वहाँ से निवृत होने के बाद भी दोनों में आपसी सम्बन्ध रहे । दोनों एक-दूसरे से अपने-अपने हालात बताया करती हैं ।"

"हाँ, उस मौक़े पर यह काम मैंने किया तो था लेकिन मैंने पढ़ा है कि नेकी कर, दरिया में डाल, उसी पर अमल किया था । हमारे मज़हब में भी इस बात को अच्छा समझा गया है कि अगर तुम से कोई अच्छा काम हो जाए तो उस पर ख़ुदा का शुक्र अदा करो और उसे छिपाओ । हदीसों में कुछ

इस तरह के शब्द हैं कि दाएँ हाथ से नेकी करो तो बाएं हाथ को ख़बर न हो ।"

"सईद साहब ! आप भूलते हैं, आपने यह परमार्थ अल्लाह की ख़ुशी के लिए नहीं किया, बल्कि जज़्बात में आकर किया था । जज़्बात के बहाव में आकर एक बड़ा ज़ुल्म किया आपने ।"

"ज़ुल्म !"

"जी हाँ, ज़ुल्म ! आपने जज़्बात में आकर यह भी न सोचा कि बाग़ न रहने के बाद आप के माँ-बाप का क्या बनेगा । आपने अपने माँ-बाप को रोज़ी के ज़रिए से वंचित कर दिया, जो अल्लाह तआला ने अपनी कृपा से प्रदान किया था । फिर आप वहाँ से ऐसे भागे कि उन ग़रीबों की ख़बर भी न ली कि वे मरे या जिए और उन बेचारों ने ज़िन्दगी कैसे बसर की होगी । आपके ग़म में उनका क्या हाल हुआ होगा । अफ़सोस सद अफ़सोस ! कितना बड़ा गुनाह आपसे सरज़द हुआ और आप ने मुझे इसकी हवा भी न लगने दी । दावा कर रहे हैं कि आप मेरे छोटे भाई हैं, मामूली वेतन पर यहाँ सादा ज़िन्दगी बसर करते रहे । मैं समझता था कि आप तने-तन्हा हैं ! अगर आप बता देते तो मैं इतना दे सकता था कि आप माँ-बाप के लिए भी कुछ-न-कुछ भेज सकते । आपको फ़ातिमा फ़िरदौस की ज़िन्दगी बनाने की तो इतनी चिन्ता थी, लेकिन माँ-बाप की महरूमी पर आपको तरस न आया । प्रिंसिपल साहिबा आप को नादान और नासमझ इंसान कहती हैं, तो अनुचित नहीं कहतीं। मेरा ख़याल है कि आप फ़ातिमा फ़िरदौस की मुहब्बत में बुरी तरह गिरफ़्तार थे, जिसका शऊर आप को न था । आपने बीच की राह नहीं अपनाई । माँ-बाप की सेवा फ़र्ज़ थी । फ़ातिमा फ़िरदौस अधिक से अधिक मुहल्ले की एक लड़की थी, उस पर एहसान करना बस नफ़िल (फ़र्ज से कम) ही तो हो सकता है । आपने नफ़िल को फ़र्ज़ पर प्राथमिता दी । बेहतर से कमतर को ज़्यादा समझा। अल्लाह तआला क़ियामत में आप से पूछेगा । आप अपने बड़े भाई को बताएँ कि आप क्या जवाब देंगे.....?"

मैं जज़्बात के बहाव में ख़ुदा जाने और क्या-क्या कहता रहा । सईद साहब सिर झुकाए सुनते रहे । उनकी चोरी उनके सामने खोल दी गई थी । जब मैं दिल की भड़ास निकाल कर चुप हुआ तो उठकर अन्दर चला गया । वहाँ मैंने एक बुर्क़ापोश औरत को देखा । बीवी से पूछा कौन हैं ? मालूम हुआ

कि प्रिंसिपल साहिबा अभी-अभी आई हैं । मैंने उनसे बताया कि मैंने यह और यह सईद साहब से कहा है । प्रिंसिपल साहिबा घबरा गईं । बैठक की तरफ़ दौड़ीं, पीछे मैं और मेरी बीवी दोनों चले । वहाँ देखते हैं कि सईद साहब चारपाई पर बेहोश पड़े हैं ।

प्रिंसिपल साहिबा ने कहा :-

"आप ने अच्छा नहीं किया कि सब कुछ एक ही मीटिंग में बता दिया । ग़नीमत हुआ कि आपने इसका ज़िक्र नहीं किया कि फ़ातिमा फ़िरदौस की शादी नहीं हुई । अच्छा अब आप जल्द से जल्द हकीम या डाक्टर को बुलाएँ ।"

यह कहकर प्रिंसिपल साहिबा ने सईद साहब के दिल पर हाथ रख दिया । पुकारने लगीं । "सईद मियाँ ! सईद मियाँ ! " उन्होंने सिसकी भरी और हिचकियाँ लेने लगीं । मैं भागा-भागा एक बूढ़े और अनुभवी हकीम के पास पहुँचा जो मेरे बुज़ुर्गों में से थे और जनसेवा के रूप में प्रेक्टिस कर रहे थे । उनसे शुरू से आख़िर तक सारे हालात कहे । साथ लिया और घर आया। यहाँ सईद साहब को होश आ चुका था । लेकिन वे अभी तक गुमसुम थे । प्रिंसिपल साहिबा ने हमें देखा तो एक तरफ़ सिमट गईं । हकीम साहब ने आकर नब्ज़ देखी, नुस्ख़ा लिखा और दवा देने की हिदायत की। नुस्ख़ा लेकर मैं हकीम साहब के साथ गया । रास्ते में कहने लगे— "दिल पर सीधे चोट पड़ी है, लेकिन ख़तरा नहीं है । अगर तुम वह बात भी बता देते कि फ़ातिमा फ़िरदौस की शादी नहीं हो सकी और वह वहाँ उनका नाम लेकर जी रही है, तो यक़ीनन हार्ट फ़ेल हो जाता ।"

मैं हकीम साहब के यहाँ से दवा लेकर आया । अपनी बीवी को दवा दी और वे लेकर अन्दर चली गईं; उनके पीछे प्रिंसिपल साहिबा भी गईं । अन्दर से दवा बनकर आई । मैंने सईद साहब को पिलाई । अल्लाह का शुक्र है कि कुछ आराम हुआ । शाम तक दो-तीन बार दवा पीने से वे ठीक हो गए । इत्मीनान हो जाने पर प्रिंसिपल साहिबा चली गईं और मुझसे बाद में मिलने के लिए कहती गईं ।

उनके जाने के बाद मैंने सईद साहब से हाल पूछा । उनकी ज़बान से निकला— "अलहम्दुलिल्लाह" इसके बाद मैंने उनके सामने यह पेशकश रखी कि मैं उनके माँ-बाप के लिए कुछ रक़म भेज दूँ । साथ ही यह भी कहा कि यह मुझ पर हक़ है, क्योंकि मैं आप का बड़ा भाई हूँ जिसका इक़रार आप कर चुके हैं ।

सईद साहब कुछ न बोले । जाने की इजाज़त चाही तो मैंने रोक लिया और कहा कि आज यहीं आराम करें । कल जब स्कूल खुले तो चले जाइएगा । सईद साहब राज़ी हो गए । फिर मैंने उनसे किसी तरह की बात नहीं की । दूसरे दिन मैंने उनके पिताजी की सेवा में मनीआर्डर कर दिया । कूपन में लिख दिया कि यह आप के लिए है, लेकिन यह नहीं लिखा कि आपका सईद यहाँ है । मैं डरा कि कहीं ऐसा न हो कि वे अचानक सईद का हाल मालूम होने की ख़ुशी बर्दाश्त न कर सकें—ख़ुदा न करे ।

(6)

"प्रिंसिपल साहिबा ! आप सईद साहब को देख रही हैं, उनकी हालत क्या होती जा रही है ।"

"जी हाँ ! देख रही हूँ । सोच और फ़िक्र के चिह्न चेहरे पर नज़र आने लगे हैं । ख़ुदा का शुक्र है कि 'आदमी' बनने लगे हैं ।"

"आदमी ! और अब तक क्या थे ?"

"एक बुत, पत्थर की मूर्ति जो न कुछ बोले न कुछ सुने, न कुछ देखे और न सोचे । अब तो माशाअल्लाह, घण्टों बैठे कुछ सोचते रहते हैं और जहाँ तक मेरा विचार है, वे यह सोचते हैं कि उन्होंने जो कुछ किया जज़्बात में आकर किया । उन की इस सोच को मैं उनके लिए अच्छा शगुन समझती हूँ ।"

"मेरा ख़याल कुछ और है ।"

"क्या ?"

"उस दिन जो मैंने उनका सारा कच्चा-चिट्ठा खोलकर उनके सामने रख दिया तो अब वे अपने को लज्जित और शर्मिंदा महसूस कर रहे हैं । मेरे सामने आते हुए झिझकते हैं, बहुत कम बातें करते हैं ।

"हो सकता है कि यह भी हो, लेकिन ज़रा इस तब्दीली पर ग़ौर करें । एक दिन वह था कि आप से खुलकर बातें करते थे और मुझ से बेज़ार रहते थे । अब आप के पास बैठने से घबराते हैं और मुझसे बातें करने का बहाना ढूंढते रहते हैं । "प्रिंसिपल साहिबा ! देखिए यह बात यूँ होनी चाहिए । पाठ्यक्रम में यह परिवर्तन हो तो अच्छा है । मैं समझता हूँ कि एक शिक्षिका की और

ज़रूरत है । आप बहुत काम करती हैं, आपके लिए एक सहायक की ज़रूरत है ।''

ये और ऐसी ही बहुत सी बातें मुझसे कभी ज़बानी और कभी लिखित रूप में करते रहते हैं । मुझ पर कितना मेहरबान हो गए हैं ! ख़ैर अच्छा है कुछ बोले तो । हम इस पर यह समझें कि—

राह पर उनको लगा लाए तो हैं बातों में ।
और खुल जाएँगे दो-चार मुलाक़ातों में ॥

मैं अपने और आपके इस दोस्त की एक और दिलचस्प कहानी सुनाऊँ । अभी परसों इण्टरवल में मुझसे कहने लगे कि मैं तन्हाई में आपसे मिलना चाहता हूँ । अगर इजाज़त दें तो दौलतख़ाने पर हाज़िर हो जाऊँ ।''

इसका मैंने जो जवाब दिया वह सुनिए और उस ग़रीब की हालत का अन्दाज़ा लगाइए कि क्या हुई होगी । मैंने जवाब दिया—

''सईद साहब ! आपको मालूम है कि जब दो नामहरम तन्हाई में बैठते हैं तो तीसरा उनके साथ शैतान भी आ बैठता है ।''

यह सुनना था कि उनका चेहरा एकदम पीला पड़ गया । फिर फ़रमाया— ''कुछ ज़रूरी बातें अपने बारे में अर्ज़ करना चाहता हूँ ।'' बेचारे सईद साहब की हालत पर तरस तो आया, मगर मैंने बड़े तीखेपन से कहा—

''तो मैनेजर साहब के साथ आइए न । वे तो आप के हमदर्द हैं ।'' मेरा यह मशविरा उन्होंने स्वीकार नहीं किया । मैंने मिलने से इनकार कर दिया । अब आप समझ गए होंगे कि हज़रत का दिल क्या कहता होगा ।''

''आपने ज़ुल्म किया बेचारे पर । ज़रा उस ग़रीब के दिल की बातें सुन तो ली होती ।''

''क्या करती सुनकर । जानती हूँ वे क्या कहते—आप फ़िरदौस से मिलने कब गईं थीं ? फ़िरदौस अपने शौहर के साथ ख़ुश है ? मेरे अब्बाजान का क्या हाल है ? और वहाँ मैंने जो स्कूल स्थापित किया था वह ठीक से चल रहा है, आदि आदि !'' शायर के कथन के अनुसार :-

''ओ देश से आने वाले बता, किस हाल में हैं याराने-वतन ?''

''तो फिर क्या करना चाहिए ?''

''मेरा अनुमान है कि अब सईद साहब यहाँ ठीक से काम नहीं कर सकते ।

उनका दिमाग़ अब अस्त-व्यस्त हो चुका है। अब वे कुछ यहाँ की सोचते हैं और कुछ से बहुत अधिक वहाँ की सोचते हैं । दिमाग़ी बेचैनी की हालत यह है कि अकसर यहाँ और वहाँ की बातें गड-मड कर देते हैं । एक दिन मैं एक काम से पर्दे के पास गई, पर्दा हटाकर चिक से देखा तो हज़रत एक चित्र बना रहे थे । मैंने पूछा :-

"सईद साहब ! यह चित्र कैसा बन रहा है ? चौंक पड़े, "इसी स्कूल का चित्र है' ।"

"इस स्कूल का चित्र तो मौजूद है ।"

"सोचा कि एक और बना लूं ।"

"क्यों ?"

"रखी चीज़ कभी काम आ ही जाती है ।"

"नक़्शानवीस से क्यों न बनवा लिया।"

"इस वक़्त मुझे फ़ुर्सत थी ।"

"माशा अल्लाह ! आप को फ़ुर्सत मिलने लगी है ।"

"मैंने चुटकी ली तो नक़्शा एक ओर रख दिया और पूछने लगे । 'फ़रमाइये मेरे लायक़ कोई काम ?' मैनेजर साहब देख रहे हैं । बातचीत का रंग बदल रहा है । कहाँ यह दूरी कि जो कुछ कहना हो लिखकर दीजिए और कहाँ यह नज़दीकी कि मेरे लिए कोई काम !"

यह सुनकर मैंने तंज़ किया— "आप स्कूल के प्रबन्धक हैं । हुक्म दें, सेवा के लिए तो हम शिक्षिकाएँ हैं ।"

किसी भूमिका के बग़ैर कहने लगे— "अब आप फ़िरदौस से मिलने जाएँ तो यह नक़्शा लेती जाएँ। वहाँ भी ऐसा ही एक स्कूल आपने देखा होगा, वहाँ के प्रबन्धक को दे दीजिएगा ।"

"तो क्या जब आप वहाँ से तशरीफ़ लाए थे, किसी को अपना उत्तराधिकारी बना आए थे ?" मैंने एक तीर और उनके दिल पर मारा । आहिस्ता से आह करके रह गए । उदास होकर पूछने लगे— "जब आप वहाँ जाती हैं तो किसी और से भी मिलती हैं ?"

"और कौन ?" मैंने पूछा । रुँधी हुई आवाज़ में बोले— "वहाँ..... वहाँ.....

मेरे घर..... घरवाले....." इसके आगे कुछ न कह सके । टप-टप आँसू गिराने लगे । वह तो अच्छा हुआ कि उस वक़्त घण्टी बजी, इण्टरवल ख़त्म हुआ, मैं अपने कमरे में चली आई सईद साहब को उसी हाल में छोड़कर ।

"तो मैनेजर साहब ! आप समझ गए होंगे कि आजकल यह हज़रत क्या सोचते रहते होंगे ।"

घर याद आने के मानी यह हैं कि अब घर उन्हें खींचेगा । आप उनकी जगह के लिए किसी और व्यक्ति का प्रबन्ध कर लीजिए । अब यह हज़रत आप के हाथ से गए ।"

प्रिंसिपल साहिबा ने सईद साहब के विचारों और भावनाओं का विश्लेषण करके यह परिणाम निकाला तो मुझे चिन्ता हुई कि अगर सचमुच सईद साहब यहाँ से चले गए तो यह स्कूल कौन सम्भालेगा । मैंने प्रिंसिपल साहिबा से कहा— "कुछ कहा नहीं जा सकता कि यह हज़रत जज़्बात के बहाव में किस दिन बह जाएँ, और इससे पहले कि हम उनकी जगह पर दूसरा व्यक्ति रख सकें, वह यहाँ से चल दें। आपकी नज़र में कोई है ?"

"ज़रूरत रुकती नहीं । कोई न कोई ख़ाली जगह की पूर्ति कर ही देता है । दुनिया की व्यवस्था कुछ इसी तरह चल रही है । किसी ने कितनी सच्ची बात कही है :-

"ख़ुदा जाने यह दुनिया जलवागाहे-नाज़ है किसकी ।
हज़ारों उठ गए लेकिन वही रौनक़ है महफ़िल की ॥

"अगर आप की राए हो तो उन्हें यह मशविरा दिया जाए कि कुछ दिनों के लिए घर हो आएं ?"

"नहीं मेरी राए यह नहीं है । उन्हें ख़ुद कहने दीजिए, आप से ख़ुद कहेंगे । हाँ, एक नज़ाकत का बन्दोबस्त करना है ।

"वह क्या ?"

"यह हज़रत घर जाएँगे तो फ़िरदौस के सारे हालात उनके सामने आईना हो जाएँगे। माँ-बाप का जो हक़ उन्होंने अदा नहीं किया है, उसका भी उन्हें एहसास होगा । फ़िलहाल तो यह हज़रत "न जाए रफ़तन, न पाए मांदन" अर्थात् न जाते बने न ठहरते, का चित्र बने हैं। कभी सोचते होंगे कि वहाँ जाकर माँ-बाप को क्या मुँह दिखाएँगे! उनके ज़ेहन में फ़िरदौस का शौहर भी

रक़ीब की सूरत में होगा, तो हज़रत जल्द कोई फ़ैसला नहीं कर सकेंगे । उनके लिए रास्ता हमको-आपको ही निकालना होगा । अगर आप मुझे एक हफ़्ते की छुट्टी दे दें, तो मैं फ़िरदौस से मिल आऊँ । उससे भी मशविरा हो जाएगा । वहाँ सबको उनकी आमद के लिए तैयार करना होगा । फिर आकर उनका ज़ेहन वहाँ जाने के लिए भी तैयार करना होगा ताकि ये हज़रत वहाँ के हालात का मुक़ाबला कर सकें ।''

''छुट्टी तो आप नाज़िम साहब से माँगिए'' मैंने मुस्कुरा कर कहा । प्रिंसिपल साहिबा भी हँस दीं । इसके बाद बोलीं कि अब इजाज़त दीजिए । और हाँ, क्या आप मुझे यह शरफ़ बख़्शेंगे कि अब की बार जब मैं फ़िरदौस से मिलने जाऊँ तो आप राना बाजी को मेरे साथ कर दें ।

''अगर यह जाना चाहें तो मैं प्रसन्नतापूर्वक भेज दूँगा । अच्छा है ज़रा मनोरंजन भी हो जाएगा ।''

''शुक्रिया ! अस्सलामु अलैकुम०''

प्रिंसिपल साहिबा के जाने के बाद मैंने बीवी से कहा— ''हो न हो यही फ़िरदौस है, तुम ज़रूर-ज़रूर जाना और देखना कि वहाँ कोई फ़िरदौस है भी कि नहीं ?''

''यह फ़िरदौस तो नहीं है क्योंकि औरत इस तरह मंसूबा बना कर काम नहीं करती । आप मर्द हैं, औरत का दिल मर्द की तरह नहीं होता । औरत तो जो कुछ करना चाहती है कर गुज़रती है । मनोवैज्ञानिक वार्तालाप और इतना लम्बा ड्रामा कहाँ करती है । अगर यह फ़िरदौस होती तो इससे सब्र नहीं हो सकता था । धीरे-धीरे राज़ का खुलना मुहब्बत के मारों के बस का नहीं ।''

राना ने यह कहा तो मैं ख़ामोश हो गया ।

(7)

''आप बहुत जल्द वापस आ गईं । अच्छा हुआ, आप जल्द आ गईं । सईद साहब ने कई बार आप को पूछा । उन्हीं हज़रत ने आप के आने की ख़बर दी ।'' मैं कई जुमले एक साथ बोल गया ।

''ख़ूब, सईद साहब ने मुझे पूछा ? शुक्रिया ! मुझको पूछा तो मेहरबानी की ! अच्छा लीजिए इस मेहरबानी का बदला ।''

प्रिंसिपल साहिबा ने हाथ परदे से बाहर निकाला एक लिफ़ाफ़ा उनके हाथ में था । इससे पहले कि मैं लिफ़ाफ़ा लूँ, सईद साहब ने बड़ी बेचैनी के साथ हाथ बढ़ाकर लपक लिया ।

"किसका है पत्र ?"

"पत्र तो है सईद साहब के वालिद साहब का, लेकिन लिफ़ाफ़े पर देखिए— मैनेजर साहब लिखा है ।"

सईद साहब ने एक नज़र लिफ़ाफ़े पर डाली, फिर मुझे दे दिया । मैंने लिफ़ाफ़ा फाड़ा, पत्र निकाला । सईद साहब ने मुझ पर नज़रें जमा दीं । मैं पत्र पढ़ने लगा । लिखा था—

"प्यारे बेटे !....." संबोधन पढ़कर मैंने सईद साहब से कहा— 'लीजिए आप के नाम है ।' और फिर हम दोनों पत्र पढ़ने लगे ।

"प्यारे बेटे ! अल्लाह का शुक्र है कि तुम ज़िन्दा हो । अल्लाह तुमको बहुत दिनों ज़िन्दा रखे । तुमने जो रूपये भेजे वे मुझे मिल गए । वह मैनेजर साहब जिन्होंने रुपये भेजे हैं यक़ीनन तुम ही हो । इस भरी-पूरी दुनिया में जो मेरे लिए बिलकुल ख़ाली-ख़ाली है, तुम्हारे सिवा कौन हो सकता है जो मेरे लिए रक़म भेजे । मेरा यह अनुमान ग़लत नहीं हो सकता । इन रूपयों में मैंने तुम्हारी ख़ूशबू पाई.....।

मेरे गुमशुदा बेटे ! मेरे इस जुमले पर हँस न देना । मुझ पर सठिया जाने का तंज़ न करना । यह ठीक है कि मैं हज़रत याक़ूब (अलै०) की तरह नबी नहीं । आँहज़रत ने अपने यूसुफ़े-गुमगश्ता की ख़ुशबू कोसों दूर से सूंघ ली थी । वे पैग़म्बर थे । उनका यह एहसास अल्लाह की तरफ़ से एक ख़ास वरदान था । लेकिन मैं भी तो अपने यूसुफ़े-गुमगश्ता, अपने खोए हुए बेटे का बाप हूँ । बेटा ! बहुत बूढ़ा हो गया हूँ । शरीर में प्राण बस साँस की तरह है । आँखों में आँसू ज़्यादा हैं, रोशनी कम, बिल्कुल धुंधला-धुंधला दिखाई देता है । तुम्हारा पत्र फ़िरदौस ने पढ़कर सुनाया । उसका भी यही ख़याल है कि यह मैनेजर साहब तुम ही हो । हम दोनों को अल्लाह जाने क्यों यक़ीन है कि तुम ज़िन्दा हो और शायद इसीलिए हम दोनों ज़िन्दा हैं वरना .....।

पत्र में कई लाइनें और लिखी गई थीं, जिन्हें बुरी तरह काट दिया गया था । निगाहें जमा-जमा कर पढ़ीं, फिर भी कुछ पढ़ा न जा सका । पत्र को आसमान की तरफ़ करके पढ़ा, फिर भी नाकामी हुई । लिखावट वाक़ई बुरी

तरह काटी गई थी । बहुत मेहनत की तो कहीं-कहीं से ये शब्द समझ में आए.....मेरे पास.....रहती.....इंतज़ार.....कुंवारी.....हाफ़िज शीराज़ी.....हाफ़िज़ शीराज़ी के नाम से वह शेर हम दोनों ने समझ लिया, जो नीचे लिखा था । यानी—

यूसुफ़े-गुमगश्ता बाज़ आइद ब कनआँ ग़म मख़ूर ।
कल्बा-ए-अहज़ाँ शवद रोज़े-गुलिस्ताँ गम मख़ूर ।।

कटी हुई इबारत न पढ़ सके तो हम दोनों बड़ी हसरत से एक दूसरे का मुँह देखने लगे । सईद साहब रोने के क़रीब थे । उनकी आँखों से आँसू बाहर निकलने को मचल रहे थे । परदे के अन्दर प्रिंसिपल साहिबा शायद हमें देख रही थीं । बोलीं—

"आपने पत्र पढ़ लिया ?"

"जी हाँ, पढ़ तो लिया !" मैंने जवाब दिया मगर यह नीचे की लिखावट बुरी तरह काट दी गई है । मालूम होता है कि कोई अहम बात थी, जो पहले रवा-रवी में लिखी गई, फिर लिखने वाले ने उसे काट दिया ।"

"और मेरा नफ़्सियाती मुतालआ यह है कि ऐसे मौक़े पर इंसान में खोज और खोज के बाद बेचैनी भी बढ़ जाती है । आप पत्र पढ़ रहे थे, और मैं आप साहबान को पढ़ रहीं थीं ।" प्रिंसिपल साहिबा ने जवाब दिया और सईद साहब आप ही आप बड़बड़ाने लगे ।

"यह तो ज़ाहिर है कि पत्र फ़िरदौस ने लिखा है । मेरे अब..... मेरे अब.... मेरे अब्बाजान.....'' और वे बच्चों की तरह रो पड़े । वे रोते रहे और अपने को सम्भालने की कोशिश भी करते रहे । इस कोशिश में कई मिनट गुज़र गए, अचानक परदे के पीछे से आवाज़ आई— "ख़ुद करदा रा इलाजे नेस्त !"

"अच्छा लीजिए ...आ.....आ.....आप....चा.....चाय.....पी.....''और फ़िर आवाज़ सिसकियों में तब्दील हो गई । हम समझ गए कि प्रिंसिपल साहिबा भी रो रही हैं । ट्रे मैंने ले ली । दो प्यालियों में चाय उँड़ेली । एक अपने आगे रखी और एक सईद साहब के आगे बढ़ा दी । अब मैं इंतिज़ार करने लगा कि सईद साहब चाय लें, तो हम भी शुरू करें । सईद साहब ने प्रिंसिपल साहिबा की सिसकियाँ महसूस कीं तो उनके आँसू एकदम ख़ुश्क हो गए और परदे की तरफ़ आँखें फाड़ कर तकने लगे ।

मुझे यह उम्मीद न थी कि प्रिंसिपल साहिबा जैसी मज़बूत दिल व दिमाग़ की औरत भी रोने लगेगी । मैंने कहा:—

"प्रिंसिपल साहिबा ! आप भी रो रही हैं ?"

"तो क्या मैं इंसान नहीं हूँ। मेरे सीने में भी इंसानों की तरह दिल है। दुखी व्यक्ति को देखकर दुखी होना स्वाभाविक ही है। इसमें आप को हैरत और आश्चर्य क्यों है। आश्चर्य तो उस पर होना चाहिए जिसके सीने में दिल न हो, जैसे हमारे सईद साहब। इनसे पूछिए, ये क्यों रोए हैं ?"

"मैं क्यों रोया हूँ, आप की नज़र में मैं इंसान नहीं ? मेरे बूढ़े बाप का पत्र मेरे सामने है। वर्षों बाद मेरा बाप मुझे मुख़ातिब कर रहा है। आप भी ख़ूब हैं— "गोएम मुश्किल व गर न गोएम मुश्किल" यानी अगर बोलूँ तो भी मुश्किल न बोलूँ तो भी मुश्किल।

"माशाअल्लाह....." प्रिंसिपल साहिबा ने कहा—"लीजिए, गूंगे भी बोलने लगे.....आप पूछते हैं कि आप के रोने पर आश्चर्य क्यों है। मैं कहती हूँ बेशक होना चाहिए। आज आप कितनी ताबेदारी दिखा रहे हैं। कल जी हाँ, वह कल जिसको दस-बारह वर्ष से ज़्यादा हो गए, याद नहीं जब उस बाप को तबाह करके घर से भाग खड़े हुए थे और फिर ख़बर भी न ली कि वहाँ कौन मरा और कौन जी रहा है।

वह इंसानियत उस दिन कहाँ चली गई थी, जब आपने अपना बाग़ फ़िरदौस के होने वाले शौहर के नाम लिख दिया था। हालांकि आप को कुछ नहीं मालूम कि कुछ देर के बाद क्या हुआ था। आपने एक तीर से किस-किस के कलेजे छलनी किए। यह आप को क्या ख़बर कि अगर मैनेजर साहब मनीआर्डर न भेजते तो उन बेचारों को, जो आप के लिए बारह वर्ष से रो रहे हैं, आप के ज़िन्दा होने का पता भी न चलता। उन्होंने मुझ से पूछा। मैंने कह दिया कि हाँ वे हज़रत वहाँ हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि उनके जाने के बाद यहाँ जो हादसा हुआ वह उन्हें मालूम है ? मैंने कहा, वे क्या जानें।"

जैसे कोई किसी की तरफ़ से भरा बैठा हो और मौक़ा पाकर वह सब कुछ कह देना चाहता हो जो उसके दिल में हो। उस वक़्त प्रिंसिपल साहिबा कुछ ऐसे ही जज़्बे में थी शब्द "हादसा" उनकी ज़बान से निकला तो सईद साहब एकदम चौंक पड़े, बोले—

"हादसा, कैसा हादसा ? फ़िरदौस ख़ैरियत से तो है ? उसके बाल-बच्चे बख़ैर हैं। वह अपने शौहर के साथ आराम से है ?"

और जवाब सुनने के लिए बिल्कुल ख़ामोश हो गए।

"क्या ख़ूब ! जिसकी शादी ही न हो सकी हो उसके बाल-बच्चों का क्या सवाल ?" आख़िर प्रिंसिपल साहिबा ने राज़फ़ाश कर ही दिया ।

"क्या कहती हैं आप !" सईद साहब घबरा गए ।

"मैं क्या जानूँ क्या हुआ ?" प्रिंसिपल साहिबा ने आम औरतों की तरह जवाब दिया ।

"क्या पच्चीस हज़ार नक़द के अलावा कुछ और हो गई थी ।"

"मैं कुछ नहीं जानती, पत्र लिखकर पूछ क्यों नहीं लेते । दो-एक दिन के लिए चले क्यों नहीं जाते । मगर आप क्या मुँह लेकर जाएँगे । बाप को क्या मुँह दिखाएँगे ।"

"क्या इस वक़्त यह नहीं हो सकता कि आप मुझे इस तरह संबोधित न करें जिस तरह हमेशा रूखेपन से पेश आती रही हैं; आप मेरे दिल का हाल नहीं जानतीं । सिर्फ़ इतना अर्ज़ करता हूँ कि मैं बेहद दुखी हूँ ।"

"और दुनिया में सब ख़ुश-ख़ुश रह रहे हैं । ज़रा जाकर अपने बाप को देखिए—ग़रीब फ़िरदौस को देखिए ।"

"प्रिंसिपल साहिबा ! माफ़ करें, फ़िरदौस क्यों ग़रीब होने लगी । ग़रीब तो मैं हूँ, उनके बड़ों ने मुझे ग़रीब समझकर....."

"कहिए, कहिए ! ख़ामोश क्यों हो गए । आप को ग़रीब समझ कर फ़िरदौस के साथ रिश्ता न किया , यही तो कहना चाहते हैं, न ! जवाब सुनिए—बहुत अच्छा किया कि आप को अपनी बेटी नहीं दी । आप एक जज़्बाती आदमी हैं । जज़्बाती आदमी का दिल आगे होता है और दिमाग़ पीछे । ऐसे आदमी का क्या एतबार । ख़ुदा जाने वह किस वक़्त क्या कर बैठे ।"

"देखिए, आप ग़ुस्सा न कीजिए । आख़िर आप को मुझ पर तरस क्यों नहीं आता । मैंने जो कुछ किया वह क्यों किया, यह आप को कैसे बताऊँ । आप मेहरबानी करके मुझे बताएँ कि क्या हादसा पेश आया और फ़िरदौस की शादी क्यों न हो सकी ।

"फ़िरदौस ने ख़ुद इनकार कर दिया ।"

"क्यों ?"

"फिर वही क्यों ? मैं कहती हूँ कि आप जाकर फ़िरदौस से ही क्यों नहीं

पूछते ।"

"आप ही इस वक़्त बता दें तो क्या होगा, क्यों मुझे तड़पा रही हैं ।"

"ख़ूब, आप थोड़ी देर तड़पें और बर्दाश्त न कर सकें । वे लोग जो दस बारह साल से तड़प रहे हैं उनकी कुछ परवाह नहीं ?"

"तो आप नहीं बताएँगी ?"

"मैं मजबूर नहीं हूँ ।"

"मैं एक अर्से से आप के तानों का निशाना बना हुआ हूँ । मैंने सब कुछ बर्दाश्त किया, अब मुझ में बर्दाश्त की ताक़त नहीं । आपको जो कुछ मालूम है वह बताना नहीं चाहतीं, न बताइए । मैं वाक़ई मूर्ख हूँ कि आपसे उम्मीद लगाए बैठा हूँ ।"

आज यह पहला मौक़ा था कि उन दोनों में बराबर की बात हो रही थी । मैं बिल्कुल चुपचाप तमाशाई बना यह ड्रामा देखता और डायलाग सुनता रहा । जब मैंने देखा कि बड़ा नाज़ुक मौक़ा आ गया है तो मैंने कहा—

"अच्छा, इस वक़्त ये बातें बन्द कीजिए । मैं देखता हूँ आप दोनों भावनाओं के बहाव में बहे जा रहे हैं । कुछ बात-चीत दूसरे मौके के लिए बचाकर रखिए ।"

सईद साहब तो इसके लिए तैयार न थे, लेकिन प्रिंसिपल साहिबा ने कहा— "बेहतर है, फिर किसी दिन बात होगी । आप इन्हें सम्भालिए कहीं पागल न हो जाएँ ।"

"जब कोई मुझे पागल बनाने पर ही उतर आया हो, तो मेरे पागल हो जाने में क्या शक है ।"

"अच्छा बस कीजिए, आइए चलें ।" कहकर मैं उठ खड़ा हुआ, सलाम करके चल दिया । सईद साहब भी मेरे पीछे हो लिए, बिलकुल इस तरह जैसे कोई उम्मीदवार नाकाम वापस हो रहा हो ।

हम दोनों प्रिंसिपल साहिबा के बाहिरी कमरे से निकले ही थे कि प्रिंसिपल साहिबा ने पुकारा—

"सईद साहब !"

सईद साहब दौड़कर गए । प्रिंसिपल साहिबा ने यह कहते हुए कि "यह फ़िरदौस ने आप के लिए दिया है ।" एक परचा उन्हें थमा दिया । पर्चा पढ़कर

सईद साहब हाए कहकर गिरे और बेहोश हो गए । मैं लपक कर पहुँचा, उन्हें सम्भाला । पर्चा देखा, लिखा था—

"बचपन के "झड़ूस" को बचपन की "झोंपड़ी" का सलाम क़बूल हो ।"

(8)

"आख़िर वे चले गए ।"

"जी हाँ ! चले गए ।"

"आप ने रोका नहीं ?"

"मेरे रोकने से क्या होता है ।"

"होता क्यों नहीं ।"

"बेकार था मेरा रोकना"

"क्यों ?"

"आप चाहती थीं कि वे जाएँ।"

"मैं कैसे चाहती थी ?"

"वह आख़िर पुर्ज़ा जो फ़िरदौस ने सईद साहब को लिखा था । न आप वह उन्हें देतीं न वे जाते । आपने मुझ से मशविरा भी न किया ।"

"अगर उनके जाने का इल्ज़ाम मुझ पर आता है तो मैं अर्ज़ करूँ—सईद साहब हफ़्ता-दस दिन के अन्दर वापस आ जाएँगे ।"

"आप को कैसे मालूम ?"

"मेरा अनुमान है ।"

"क्या फिर आप से कुछ बात-चीत हुई थी ।"

"उन्होंने चाहा तो कई बार लेकिन मैंने इसका मौक़ा नहीं दिया ।"

"क्यों ?"

"मैं जानती थी कि वे मुझ से क्या पूछते । यही कि फ़िरदौस की शादी क्यों न हो सकी ।"

"यह बात तो मुझसे भी बार-बार पूछते रहे हैं ।"

"आपने बताया तो नहीं ।"

"जी नहीं, मैंने नहीं बताया ।"

"तो फिर क्या कहकर गए ?"

"कह रहे थे—अब्बाजान से मिलने को बहुत जी चाहता है ।"

"क्या ख़याल है आपका ? वह अब्बाजान से मिलने गए हैं या फ़िरदौस से ।"

"मेरा ख़याल है कि फ़िरदौस से मिलने का जज़्बा ग़ालिब है ।"

"मेरा भी यही ख़याल है, लेकिन उस वक़्त ग़रीब का क्या हाल होगा, जब वे फ़िरदौस को वहाँ न पाएँगे ।"

"क्या मतलब ? फ़िरदौस कहाँ गई होगी ।"

"वह बीमार है और अस्पताल में दाख़िल है ।"

"बीमार है तो सईद साहब अस्पताल में मिल लेंगे ।"

"अस्पताल में शायद न मिल सकें ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि फ़िरदौस ने अपना वारिस सईद साहब के पिताजी को लिखाया है । इसलिए ज़नाना अस्पताल में उनके पिता ही जा सकते हैं या फिर कोई औरत; दूसरा व्यक्ति नहीं मिल सकता ।"

"तो यहाँ क्यों वापस आएँगे ।

"उन्हें यह नहीं बताया जाएगा कि फ़िरदौस बीमार है ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि सईद साहब पर इसका बुरा असर पड़ेगा ।"

"हाँ अंदेशा तो है, मगर जब वे पूछेंगे कि फ़िरदौस कहाँ है ? तो वे लोग क्या बताएँगे ।"

"लोग कहाँ बीच में आ गए, यह कहिए कि उनके पिताजी क्या बताएँगे । मैंने उनके पिताजी को हालात के नतीजे से आगाह कर दिया है । वे संजीदा व्यक्ति हैं, बाप हैं, वे हरगिज़ न चाहेंगे कि बेटे के दिल पर चोट लगे ।"

"मैं यह न समझ सका कि जब सईद साहब फ़िरदौस को न पाएँगे, तो भागकर यहाँ क्यों आएँगे ।"

"मेरे पास।"

"आप के पास, क्यों ?"

"मेरी ख़ुशामद करने कि फ़िरदौस से मिला दो ।"

"तो मिला दीजिएगा ।"

"मिला देने में कोई हर्ज तो नहीं है, लेकिन शायद फ़िरदौस अपनी बीमारी की हालत में उनसे मिलना पसन्द न करे । दूसरे यह कि वहाँ एक नया फ़ितना सर उठा रहा है ।"

'कैसा ?"

"वहाँ लोगों को मालूम हो गया है कि सईद साहब ज़िन्दा हैं और अब फ़िरदौस से उनकी शादी होने वाली है । जब यह बात फैली तो नवाब अली हैदर साहब बीच में आ गए । उनकी बीवी मौजूद है, लेकिन वे फ़िरदौस से शादी करना चाहते हैं ।"

"ऐं ! यह नया गुल खिला । लेकिन फ़िरदौस की राए क्या है ?"

"वह तो सईद साहब से ही शादी करना चाहती है, लेकिन वहाँ अली हैदर का पब्लिक पर बहुत ज़्यादा दबाव है । वे बाअसर आदमी है और उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ अगर कोई ज़बान हिलाएगा तो उसकी ख़ैर नहीं ।"

"इसके मानी यह भी हो सकते हैं कि सईद साहब की जान को भी ख़तरा है ।

"बिलकुल"

"तो क्या किया जाए, मैं जाऊँ ?"

"आपके जाने से काम न बनेगा ।"

"फिर ?"

"मुझे जाने की इजाज़त दीजिए ।

"आप औरत ज़ात क्या कर सकती हैं ?"

"औरत ज़ात से आपका मतलब यह है कि मैं एक कमज़ोर जान हूँ, लेकिन आपको मालूम होना चाहिए कि औरत की तद्बीर उसकी अपनी तद्बीर होती है । आप देखते हैं कि एक अल्हड़ लड़की एक अनजान व्यक्ति से ब्याही जाती है, लेकिन वही अनुभवहीन लड़की अपनी सूझ-बूझ से एक राह निकालती

है, और आज़माइशों का मुक़ाबला किस ख़ूबसूरती से करती है । मर्द में यह बात नहीं । वह तो हर फूल का भौंरा होता है, औरत का साथ वह उस तरह नहीं देता, जिस तरह औरत मर्द का साथ देती है । औरत अपने शौहर को सरताज समझती है और मर्द उसे पाँव की जूती । जब चाहा निकाल फेंका। इन्हीं नवाब अली हैदर साहब को लीजिए । उनकी बीवी में क्या कमी है, हसीन है, बच्चे वाली है, गृहस्थ है, नेक है । लेकिन नवाब साहब एक बीवी पर संतुष्ट नहीं । वे वासना की कामना पर शादी करना चाहते हैं । जानते हैं कि फ़िरदौस ख़ूबसूरत है और अनाथ है, इसलिए उसे प्राप्त करना उनके लिए कुछ भी मुश्किल नहीं ।''

''बेशक मुश्किल नहीं, सीधी उँगलियों से घी न निकलेगा तो वे दूसरी तदबीरें करेंगे और वे तदबीरें ख़तरनाक होंगी ।''

''हाँ, इन्हीं ख़तरों का मुक़ाबला बड़ी ख़ूबसूरती से करना है । मैं सोच रही हूँ कि कुछ ऐसा हो कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे ।''

''आपने क्या तदबीर सोची है ?''

''मैं तदबीरों में किसी को राज़दार नहीं बनाती, जो कुछ होगा आप देख लीजिएगा । आप इस वक़्त जाने की इजाज़त दे दें ।''

''इस स्कूल का क्या बनेगा । स्कूल के मैनेजर तो गए ही थे, अब प्रिंसिपल साहिबा भी चलने को तैयार हैं। किया-धरा सब व्यर्थ जाएगा ।''

''ख़ुदा ने चाहा तो ऐसा नहीं होगा । बरकत बाजी बड़ी सूझ-बूझ की हैं, वे मेरी जगह कवर कर लेंगी ।''

''और सईद साहब की जगह ?''

''आप देख लीजिएगा ।''

''वाह ! यह ख़ूब मशविरा दिया । मैं अकेला आदमी—एक सिर हज़ार सौदा वाली बात! मैं क्या देखूँगा ।''

''देखिए, ऐसा कीजिए— शौकत साहब को काम के लिए रख लीजिए । सईद साहब शौकत साहब की बड़ी तारीफ़ करते रहते हैं । कभी-कभी उनसे काम भी लेते रहते हैं ।''

''तो यह कहिए कि प्लान पहले से बना लिया गया है । आप तो सईद साहब को 'नादान' कहती हैं— भला नादान आदमी कब इस तरह के प्लान

बनाता है ।''

''अब तो वे समझ से काम लेने लगे हैं । बस ज़रा ज़ेहन में अस्थिरता है । वह भी फ़िरदौस से शादी के बाद ख़त्म हो जाएगी । वैसे— 'दीवाना भी अपने काम में होशियार होता है ।' तो ठीक ही है ।''

''मुश्किल है । मेरे ख़याल में वे जज़्बाती आदमी हैं । यह भी हो सकता है कि शादी के बाद जब इच्छित वस्तु मिल जाए तो उसकी क़द्र न करें ।''

''हाँ, नफ़्सियाती उसूल तो यही है; और नफ़्सियात के माहिरों का भी यही कहना है । लेकिन मेरा ख़याल है कि वे फ़िरदौस से हमेशा दबे रहेंगे ?''

''दबे क्यों रहेंगे ?''

''जब उन्हें मालूम होगा कि एक लम्बे अर्से तक फ़िरदौस ने उनके पिता की सेवा की है, उनके स्थापित किए हुए स्कूल की देख-रेख की, उसे तरक़्क़ी दी है और सबसे बड़ी बात यह कि उनके लिए, सिर्फ उन्हीं के लिए एक उम्मीद लिए बैठी हुई है, तो उनकी दबी हुई सूझ-बूझ उभर आएगी और यह बेफ़िक्री ख़त्म हो जाएगी ।''

''हाँ ! ऐसा होता है । बहुत से बिगड़े हुए नौजवानों को मैंने देखा है कि शादी के बाद कुछ से कुछ हो गए ।''

''तो फिर क्या राए है, मैं जाऊँ ?''

''आप जाइए, लेकिन दो दिन के बाद । मैं शौकत साहब को समझा दूँ, आप बरकत बाजी को सब कुछ बता दें और हाँ, आप आएँगी कब तक ?''

''इंशाअल्लाह जल्द आऊँगी । ख़ुदा करे फ़िरदौस जल्द अच्छी हो जाए और अली हैदर का दिमाग़ जल्द ठीक हो जाए । मेरा अन्दाज़ा है कि एक माह के अन्दर मामला सुलझ जाएगा ।''

''और इसके बाद सईद साहब जब यहाँ आएँगे, तो वे फ़िरदौस के शौहर होंगे ।''

''आप ऐसा क्यों सोचते हैं । आप तो उनके बड़े भाई बने हैं । शादी तो आप के प्रबंध में ही होगी ।''

''बेशक, बेशक ! मैं ही सईद साहब की शादी करूँगा और अपने भाई के लिए वह सब कुछ करूँगा जो एक भाई को करना चाहिए । उन्होंने हमारी

बस्ती की जिहालत दूर की है । सारी बस्ती पर उनके उपकार हैं । मेरी राए तो यह है कि शादी यहीं से हो ।''

''यानी सईद साहब जब यहाँ से दुल्हा बन कर जाएँ और वहाँ से फ़िरदौस को ब्याह कर लाएँ तो मैं भी हक़ रखती हूँ कि वहाँ बारात का स्वागत करूँ । फ़िरदौस के वली वहाँ सईद साहब के पिता होंगे ।''

''प्रिंसिपल साहिबा ! मुझे आज आप की बातों से बड़ी ख़ुशी हो रही है । ख़ुदा करे कि वह शुभ घड़ी और नेक वक़्त जल्द आए । अच्छा तो मैं राना से कह दूँ कि वह इंतिज़ाम करे । खखेड़ तो उन्हीं के सर पड़ेगी, मैं तो सिर्फ़ रुपया ख़र्च करने वाला हूँ ।''

''इस वक़्त एक मशविरा दिल में है—मैं चाहती हूँ कि यह शादी मिसाली शादी हो ।''

''बेशक मिसाली होगी । मैं अपनी हैसियत के मुताबिक़ शादी के ख़र्च में कमी न करूँगा ।''

''इस तरह तो मिसाली शादी न होगी । शादी में धूम-धाम और ख़र्च करने वाले बहुत हैं ।''

''फिर मिसाली शादी कैसे हो सकेगी ?''

''बस यह उसूल सामने रखें कि कम से कम ख़र्च हो । आपने पढ़ा होगा कि बेहतरीन शादी वह है जिसमें कम ख़र्च हो ।''

''जी हाँ, यह हदीस मैंने पढ़ी है । मगर जोड़े और दुलहन के लिए ज़ेवरात तो चाहिएं ही । अपने भाई की तरफ़ से दावते-वलीमा भी मैं ही दूँगा ।''

''अच्छा, ख़ैर ! वह तो सब हो जाएगा । अब मुझे जाने दीजिए और दुआ कीजिए कि अली हैदर ने जो फ़ितना खड़ा किया है, वह किसी तरह दब जाए ।''

''मैं दुआ करूँगा, लेकिन इस फ़ितने को दबाने के लिए आपने जो तदबीर सोची है, उसमें मुझे शामिल कर लेतीं तो मुझे ख़ुशी होती ।''

''आपको उस वक़्त बहुत ज़्यादा ख़ुशी होगी जब आप देखेंगे कि एक औरत की तदबीर से अली हैदर साहब अपना-सा मुँह लेकर रह जाएँगें, और कुछ न कर सकेंगे ।''

''यह सब तो मेरे लिए पहेली है ।''

“और जब इस पहेली का हल सामने आएगा तो आपको कितना मज़ा आएगा ।”

“यही तो मैं जानना चाहता हूँ ।”

“अगर अभी से बता दूँगी तो सारा मज़ा किरकिरा होकर रह जाएगा । जिस तरह शायर मुशायरे से पहले अपनी नई ग़ज़ल किसी को नहीं सुनाता; उसी तरह मैं इस फ़ित्ने के हल को छिपा कर रखना चाहती हूँ ।”

“आपकी ख़ुशी, कहीं ऐसा न हो कि औरत-ज़ात अपने दाँव से ख़ुद ही गिर जाए ।”

“इंशाअल्लाह, ऐसा न होगा ।”

“ख़ुदा आपको कामयाब करे ।”

“तो फिर इजाज़त है ?”

“ख़ुदा हाफ़िज़ !”

मैं सलाम करके प्रिंसिपल साहिबा के यहाँ से चला आया । सारा हाल राना से कहा । राना को बड़ी ख़ुशी हुई और वे वाक़ई इस तरह सोचने लगीं जैसे उनके भाई का ब्याह हो रहा है ।

(9)

वाक़ई सईद साहब आठवें दिन वापस आ गए । मैंने पूछा— “इतनी जल्दी क्यों आ गए ?” जवाब दिया—“वहाँ जी नहीं लगा ।

ख़ूब ! मैं सोचने लगा । यह जी न लगने की भी एक ही कही— वहाँ सईद साहब के पिता, प्रिंसिपल साहिबा और फ़िरदौस, उनकी दिलचस्पी के लिए तीनों के तीनों मौजूद और हज़रत का जी न लगा ।

मैं यह भी सोच रहा था कि वह क्या राज़ है जिसके आधार पर प्रिंसिपल साहिबा ने भविष्यवाणी की थी कि सईद साहब सप्ताह-दस दिन के अन्दर ही वापस आ जाएँगे । मैंने दिल ही दिल में यह भेद पाने की कोशिश की । मेरी समझ में आया कि फ़िरदौस से शादी करने के लिए प्रिंसिपल साहिबा बेहतरीन माध्यम हैं, और इन हज़रत के विचार में प्रिंसिपल साहिबा यहीं हैं। इसलिए यहाँ आकर उनसे बात की जाए । मैंने पूछा—

"क्या फ़िरदौस से मुलाक़ात हुई ?"

"नहीं !"

"क्या प्रिंसिपल साहिबा से आप मिले ?"

"नहीं !"

"आप के विचार में प्रिंसिपल साहिबा यहाँ होंगी, शायद इसीलिए आप उनसे मिलने यहाँ आ गए ?"

"नहीं, यह बात तो नहीं है !"

"फिर इतनी जल्दी क्यों तशरीफ़ ले आए ?"

"वहाँ जी न लगा" फिर वही जवाब दिया ।

"अब्बाजान से तो मुलाक़ात हुई होगी, उनसे सारा हाल मालूम हुआ होगा ।"

"अब्बाजान से सिर्फ़ इतना मालूम हो सका कि फ़िरदौस बीमार है और अस्पताल में दाख़िल है ।"

"क्या बीमार है ?"

"मुझे सिर्फ़ यह बताया गया कि फ़िरदौस के पेट में तेज़ाबियत पैदा हो गई है, जिसकी वजह से चेहरे और गले पर काले-काले धब्बे पड़ रहे हैं ।"

"आप देखने गए ही होंगे ।"

"गया था, लेकिन फ़िरदौस ने मिलने के इनकार कर दिया ।"

"और वहाँ प्रिंसिपल साहिबा थीं या नहीं ?"

"नहीं थीं !"

"ताज्जुब है, फ़िरदौस बीमार हो और प्रिंसिपल साहिबा वहाँ होते हुए उसके पास न हों । अच्छा यह बताइए वहाँ फ़िरदौस जो स्कूल चला रही है उसे आपने देखा ।"

"देखा !"

"कैसा चल रहा है ?"

"बिल्कुल इसी तरह जैसे हम यहाँ चला रहे हैं । वहाँ जाकर अचम्भे में डालने वाली बात यह मालूम हुई कि फ़िरदौस दो स्कूल चलां रही है । एक यह और एक कहीं और ।"

"कहीं और ?— क्या मतलब, कहीं और से क्या मुराद है ?"

"इसका जवाब मुझे न मिल सका । मैंने पिता जी से मालूम करना चाहा, लेकिन उन्होंने यह कहकर ख़ामोश कर दिया कि तुमको ज़्यादा कुरेदने की क्या ज़रूरत है । वह अपना काम कर रही है, तुम अपना काम करो ।"

"फिर अब क्या विचार है ।"

"दरअसल मैं यही गुत्थी सुलझाने के लिए जल्द वापस चला आया कि प्रिंसिपल साहिबा से मालूम करूँ, लेकिन वह मेरे आने से पहले ही यहाँ से चली गईं ।"

"आप के आने की यह वजह तो नहीं कि आप अली हैदर की ज़्यादती से बचे रहें ?"

"पिता जी ने इस तरफ़ इशारा तो किया था और दबे शब्दों में कहा भी कि कुछ दिनों के लिए वापस चले जाओ फिर जब बुलाया जाए तो आ जाना ।"

"इसका मतलब यह है कि दो-चार दिनों में वहाँ से बुलावा आ जाएगा ।"

और सचमुच पाँचवे दिन सईद साहब के अब्बाजान का पत्र आ गया । लिखा था कि–"तुम दोनों पत्र पाते ही आ जाओ और अपने साथ राना को भी लेते आओ ।"

हमने चलने की तैयारी शुरू कर दी । चलते वक़्त मैंने महसूस किया कि राना को इस सफ़र से बेहद दिलचस्पी है । उसके साथ दो ट्रंक थे । मैंने पूछा "इनमें क्या है ?" बताया कि "सईद साहब की शादी का सामान है ।"

"इसका मतलब यह है कि आप सईद साहब की शादी करने जा रही हैं ?"

राना ने जवाब दिया— "जी हाँ, यह देखिए प्रिंसिपल साहिबा का पत्र मेरे नाम आया है और ताकीद करके मुझे बुलाया है ।"

"वाह ! यह तो ताज्जुब की बात है राना ! तुम्हें मालूम है कि फ़िरदौस बीमार है ।"

"नहीं, मेरे पास इसकी कोई इत्तिला नहीं है ।"

"अजीब बात है, हमें कुछ इत्तिला मिली और तुम्हें कुछ ।"

"यानी ?" राना ने मुझसे पूछा।

"क्या तुम्हें मालूम नहीं कि फ़िरदौस बीमार है, और उसके चेहरे का रंग

काला पड़ गया है ।''

इसके जवाब में राना ने बेपरवाई के साथ कहा कि ''बीमारी का इलाज भी हो सकता है ।''

''राना ! तुम्हें कुछ ख़ास बातें हम दोनों से अधिक मालूम हैं । क्या वे बातें हमें भी बता सकती हो ?''

''अब वहीं चलकर सब कुछ मालूम हो जाएगा ।''

''क्या मालूम हो जाएगा ?''

''जो मालूम होना चाहिए ।''

राना ने बात ख़त्म कर दी । ज़रूरी सामान साथ लिया गया और हम तीनों आदमियों का क़ाफ़िला रवाना हो गया । अपने मुक़ाम पर ख़ैरियत से पहुँच गए । सईद साहब के पिता मुझसे बड़ी गर्म-जोशी के साथ मिले । स्वागत-सत्कार के रस्मी शब्दों के बाद फ़रमाया—

''आप दोनों सज्जन बड़ी गम्भीरता के साथ सुनें और अच्छी तरह सोच-समझ कर जवाब दें । सईद मियाँ से मेरा जो रिश्ता है वह स्पष्ट है, लेकिन फ़िरदौस भी मेरी लड़की है । उसने इन हज़रत की अनुपस्थित में मुझे जिस तरह सम्भाला उससे मैं बेहद प्रभावित हूँ । यह हज़रत तो मुझे तबाह करके चले गए । फ़िरदौस ने बेटा बनकर मुझे सहारा दिया । वह ग़रीब क्या-क्या पापड़ बेल रही है ? यह मैं जानता हूँ । तुम लोग तो शायद बाद में समझ सको ।

अब एक मसला बेहद पेचीदा है । फ़िरदौस अस्पताल में दाखिल है । इससे पहले आपने सुना होगा कि अली हैदर भी उससे शादी करना चाहता है । 'एक अनार दो बीमार' वाली बात आ पड़ी है । मैंने अली हैदर को भी बुलाया है । इस मौक़े पर मैं हुज़ूर नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के एक मशविरे पर सईद मियाँ और अली हैदर दोनों से अमल कराना चाहता हूँ । अस्पताल चलकर ये दोनों फ़िरदौस को देख लें । मेरा विचार है कि अब इन दोनों में से कोई भी उससे शादी करने को तैयार न होगा ।

''क्यों ?'' मैंने पूछा ।

''फ़िरदौस का चेहरा काला पड़ गया है । उसे देखकर ये हज़रत जो मेरे सामने बैठे हैं और जिनका नाम सईद साहब है और जो उसके इश्क़ में मजनूँ बनकर यहाँ से चले गए थे । जी हाँ ! ये भी उसे बीवी बनाने को तैयार न

होंगे ।''

सईद साहब के पिताजी इतना कहकर चुप हो गए । मैंने सईद साहब की तरफ़ देखा । वे सर झुकाए बैठे रहे । उनके चेहरे पर एक रंग आता था, एक जाता था । साफ़ ज़ाहिर हो रहा था कि अन्दरूनी कशमकश में मुब्तला हैं ।

हम सब चुपचाप बैठे थे । इतने में अली हैदर साहब एक रईस की तरह बने-ठने पधारे । सईद साहब के पिताजी ने बढ़कर उनका स्वागत किया और जो बात हमसे कही थी, उनके सामने भी रखी । उन्होंने इस प्रस्ताव को पसन्द किया और इसके बाद हम सब अस्पताल की तरफ़ चल दिए ।

अस्पताल पहुँचकर इत्तिला कराई गई । एक नर्स ने मार्गदर्शन किया और उस वार्ड में ले गई जहाँ फ़िरदौस ज़ेरे-इलाज थी । मैंने देखा कि वहाँ राना के सिवा कोई और न था । मेरा ख़याल था कि प्रिंसिपल साहिबा वहाँ ज़रूर होंगी । मैंने राना से कहा—

''तुम अकेली । और प्रिंसिपल साहिबा ?''

''आप घबराते क्यों हैं, वह भी मिल जाएँगी । आप तो मेरे साथ आइए और यहाँ जो कुछ होना है हो लेने दीजिए ।''

राना यह कहकर उठीं, मुझे साथ लिया और अस्पताल के छोटे से पार्क में ले गईं । एक बेंच पर ख़ुद भी बैठीं और मुझे भी बिठा लिया । मैंने पूछा यह क्या ड्रामा हो रहा है । तुम्हें मुझसे ज़्यादा मालूम है, मगर तुमने मुझे कुछ बताया नहीं ।''

राना मुस्कराई और बोली—

''यह एक राज़ है जो आज खुलेगा ।''

अचानक वह उठ खड़ी हुई—''वह देखिए अली हैदर साहब वार्ड से बाहर आ गए ।''

मैंने देखा और लपक कर उनके पास गया । उन्होंने भी मुझे देख लिया । 'ला हौल.....' पढ़ी । मैंने ख़ैरियत पूछी । मालूम हुआ कि फ़िरदौस का चेहरा तो कुरूप हो चुका है । ''उससे तो एक मूर्ख व्यक्ति ही शादी कर सकता है ।''

यह कहकर उन्होंने अपनी राह ली । राना ने कहा—''अब चलिए, देखें सईद साहब ने क्या फ़ैसला किया है ?''

हम दोनों वार्ड के अन्दर गए। वहाँ सईद साहब के पिता उनसे कह रहे थे— "क्या तुम इससे शादी करने को तैयार हो ?"

हमने सुना कि सईद साहब ने जवाब दिया—"अब्बा ! मुझे मनज़ूर है।"

"सोच लो ! अपने बड़े भाई से मशविरा कर लो। ऐसा न हो कि कल पछताना पड़े।"

मैंने भी सईद साहब से कहा कि "ख़ूब सोच लो। उम्र भर का साथ है। अगर इनकार करो तो मैं एक से एक ख़ूबसूरत लड़की से शादी करा सकता हूँ।"

"नहीं, मैं जिसको अच्छा कह चुका; उसको बुरा क्यों कर कहूँ।"

मैं सईद साहब के फ़ैसले पर हक्का-बक्का रह गया। राना मुस्करा रही थी। और सईद के वालिद साहब के चेहरे से ख़ुशी फूटी पड़ रही थी।

मैंने राना की तरफ़ देखा, उसने मुझसे पूछा—"क्या अली हैदर चले गए ?"

"वे तो गए, तुमने यह क्यों पूछा ?"

उनके अरमानों की एक निशानी यहीं रह गई।"

"क्या ?"

"एक आइना।"

"कैसा आइना ?"

"जिसमें उन्होंने अपनी घटिया भावनाओं की तस्वीर देखी है।"

"यानी ?"

जवाब में राना उठी। उसने फ़िरदौस के चेहरे पर हाथ डाला और उसकी नाक पकड़ कर खींची तो एक काले धब्बे वाली झिल्ली खिंची चली आई।

काली झिल्ली के उतरने के बाद ऐसा मालूम हुआ जैसे चांद ग्रहण से निकल आया। मैंने फ़िरदौस के चेहरे की एक झलक देखी। इसके बाद उसने चादर से सिर छिपा लिया।

"अरे! यह क्या ?" सईद साहब की ज़बान से निकला।

"बेटा ! यही एक सूरत थी जिससे फ़िरदौस अली हैदर के फंदों से ख़ुद भी बच सकती थी और तुमको भी बचा सकती थी। वरना अगर उससे इनकार

करके तुम्हारे साथ शादी कर लेती तो वह दुश्मन न तुमको ज़िन्दा छोड़ता और न फ़िरदौस को ।''

''मगर जनाब.....'' मैंने कहा ''अब तक एक बात समझ में न आई कि प्रिंसिपल साहिबा यहाँ कहीं नज़र नहीं आ रही हैं ।''

''प्रिंसिपल साहिबा कौन ?'' सईद साहब के पिताजी ने पूछा ।

''वे हमारे स्कूल की प्रिंसिपल हैं ।''

''यह राना से पूछ लीजिएगा ! चलिए अब इन दोनों को अक़्दे निकाह में जकड़ दें ।''

''राना !.....'' मैंने अपनी बीवी से पूछा— ''क्या प्रिंसिपल साहिबा और फ़िरदौस एक ही शख़्सियत के दो रूप हैं ?''

''जी और क्या ?''

राना ने जवाब दिया ।

और मैं फ़िरदौस की सूझ-बूझ की दाद देने लगा ।

-:समाप्त:-